राष्ट्र ही था जिसका धर्म

– डॉ. अवनिजेश अवस्थी

अमेरिका के शिकागो में 1893 में हुए विश्व धर्म सम्मेलन में 'भाइयों और बहनों' के संबोधन से जिस स्वामी विवेकानंद ने विश्वभर के सैकड़ों धर्मगुरुओं और समूचे अमेरिकी–यूरोपीय समाज को मंत्रमुग्ध हो जाने पर विवश कर दिया था, उनके एक सौ पचासवें जन्म दिवस पर उन्हें अपना भारतीय समाज किस रूप में याद करे–केवल एक धर्मगुरु के रूप में, सन्यासी, आध्यात्मिक विभूति के रूप में या फिर गेरुआ वस्त्र धारण किए, उस स्वामी के रूप में जो हिंदुस्तान के युवकों से निर्द्वंद्व होकर यह आह्वान करता है – "आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाए। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी–देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जागृत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी–देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी–देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें। जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देवी–देवियों की पूजा करने योग्य होंगे अन्यथा नहीं। आधा मील चलने की शक्ति नहीं और हम हनुमानजी की तरह एक ही छलांग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता।" यह आह्वान उन्होंने (तत्कालीन) मद्रास के अंतिम व्याख्यान में दिया। कुंठित से कुंठित भारतवासी में कितना आत्मविश्वास जगा सकता है, कितनी ऊर्जा का संचरण कर सकता है, भुजाएं फड़का सकता है – इसे पढ़कर ही जाना जा सकता है, लेकिन पिछले लगभग सालभर की घटनाओं से यह जरूर लगने लगा है कि मॉल, मल्टीप्लेक्स और मोबाइल वाला हिंदुस्तान का युवा भी दो डिग्री तापमान की कड़कती ठंड में पानी की बौछारों और पुलिस की लाठियों के आगे तनकर खड़ा हो सकता है। 'सब कुछ चलता है' और 'यहां कुछ बदलने वाला नहीं है' जैसे जुमलों को झुठलाने के लिए वह आज हाथों में मोमबत्ती लिये दिखाई दे रहा है, कल उसके हाथ में 'मशाल' होगी। यदि फिर भी इस व्यवस्था के पोषकों को इसका अर्थ समझ में नहीं आया तो 1942 और 1974 जैसे आंदोलनों की पुनरावृत्ति भी हो सकती है, बल्कि उससे कहीं ज्यादा व्यापक, असरदार और निर्णायक आंदोलन भी हो सकते हैं, यथास्थितिवादियों को यह बात जितनी जल्दी समझ में आएगी, यह गुस्सा और रोष उतना ही संयमित, मर्यादित और अनुशासित रहेगा।

अपने समय के तमाम धर्माचार्यों, गुरुओं और आध्यात्मिक विभूतियों से मिल चुकने के पश्चात् विवेकानंद, जब नरेंद्रनाथ ही थे, रामकृष्ण परमहंस के पास गए तो उन्होंने उनसे प्रश्न किया था, "क्या तुमने ईश्वर को देखा है?" प्रश्न तो वे इससे पूर्व भी बहुत लोगों से कर चुके थे किंतु रामकृष्ण से जो उत्तर उन्हें मिला, वह पहली बार ही मिला– "हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है, बिल्कुल वैसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूं।" इस एक पंक्ति के बिल्कुल सपाट उत्तर ने उस नरेंद्रनाथ की केवल गुरु की खोज ही पूरी नहीं कर दी, उनके भीतर के समूचे उद्वेग को ऐसी परिश्रांति दी जिसने उन्हें स्वामी विवेकानंद बना दिया। विदेश से लौटने के पश्चात् भारत के दक्षिणी समुद्र तट कन्याकुमारी के शिलाखण्ड जो अब विवेकानंद शिला स्मारक के नाम से आध्यात्मिक और पर्यटन स्थल के रूप में विख्यात और स्थापित हो गया है, पर तीन दिन तीन रात की समाधि के उपरांत

विवेकानंद के मन–मस्तिष्क, चिंतन–कर्म और व्याख्यानों भाषणों में जो एक ही चीज दिखाई देती है, वह है अपने भारतवर्ष के अतीत–गौरव का आख्यान और उसी प्रकार के गौरवशाली भविष्य का स्वप्न देखना और उस स्वप्न को यथार्थ में बदलने के लिए गुलाम देश के निवासियों में आत्म–प्रत्यय को जागृत करने का अनवरत् प्रयत्न करना।

दरअसल, स्वामी विवेकानंद के शब्द उस प्रचलित, रूढ़ और चालाकी भरी धारणा का प्रत्याख्यान करते हैं जिसके अनुसार गेरुआ कपड़े धारण करने वाला 'संन्यासी' केवल आध्यात्मिक विषयों पर चिंतन मनन कर सकता है, ईश्वर की खोज में हिमालय की कंदराओं और नदी किनारे के आश्रमों में तप कर सकता है, यज्ञ–हवन कर सकता है लेकिन उसे अपने देश के बारे में सोचने, बोलने और कुछ करने का तात्पर्य उसका अपने 'धर्म' से विचलन है। देश के बारे में सोचने और बोलने पर 'राजनेताओं' ने अपना ऐसा 'कॉपीराइट' घोषित कर रखा है जिसमें किसी और का प्रवेश एकदम निषिद्ध है ! विवेकानंद के समूचे चिंतन का जो केंद्र–बिंदु है वह ईश्वर की प्राप्ति से बहुत अधिक भारत के भविष्य की चिंता है, उनकी पीड़ा यहां की जातियों में बुरी तरह बंटा हुआ समाज और अतीत की ज्ञान–परंपरा का विस्मरण है, इसलिए जब उनसे यह प्रश्न किया गया कि आप उसी भारत, उसी हिंदू धर्म पर गर्व करने की बात करते हैं जहां छुआछूत है, जहां अजीबोगरीब रूढ़ियां हैं, अशिक्षा है, अज्ञान है, गरीबी है – तो उनका एकदम स्पष्ट उत्तर था कि कृपया समय, परिस्थितियों और लंबी गुलामी के कारण आ जाने वाली विसंगतियों को आप मेरे धर्म, समाज और देश पर मत आरोपित करिए, यह विसंगतियां आज का सत्य हो सकती हैं – हमेशा–हमेशा का नहीं, और इन्हीं विसंगतियों से मुक्त होना ही प्रत्येक भारतवासी का लक्ष्य होना चाहिए। 1901 में ढाका में दिए गए उनके व्याख्यान में वे यह भी स्पष्ट कहते हैं, किंतु प्राचीन गौरव के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम भी उनके सदृश ऋषि हो सकेंगे। भूतकाल में हमारी खूब उन्नति हुई थी, मुझे उसे स्मरण करते हुए बड़े गौरव का अनुभव होता है। वर्तमान अवनत अवस्था को देखकर भी मैं दुःखी नहीं होता और भविष्य में जो होगा, उसकी कल्पना कर मैं आशान्वित होता हूं। ऐसा क्यों? क्योंकि मैं जानता हूं कि बीज का संपूर्ण रूपान्तरण होना होता है।

हां, जब बीज का बीजत्व भाव नष्ट होगा, तभी वह वृक्ष हो सकेगा। इसी प्रकार, हमारी वर्तमान अवनत व्यवस्था के भीतर ही, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भविष्य की हमारी धार्मिक महानता की संभावनाएं प्रसुप्त हैं जो अधिक शक्तिशाली एवं गौरवशाली रूपों में उठ खड़ी होने के लिए तत्पर हैं।' ये शब्द किसी कोरे आशावादी या झूठे स्वप्नलोक में रहने वाले व्यक्ति के कदापि नहीं लगते, परम आत्मविश्वास और स्वप्न को साकार करने के संकल्प से लबरेज लगते हैं। यह भी सत्य नहीं है कि स्वामीजी ने सिर्फ भाषण या व्याख्यान दिए हों, उन्होंने अपने विचार और दृढ़ता और स्पष्टता से अपने आचार–व्यवहार में करके भी दिखाया। वे किसी भी निम्न जाति के कहे जाने वालों से उसकी चिलम मांग सकते थे और अपनी निम्न जाति का हवाला देकर उसके चिलम देने से मना करने पर उससे छीन कर भी पी सकते थे, इसी घटना पर हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर ने 'जूठी चिलम' कविता लिखी। गेरुआ वस्त्रधारी हिंदू संन्यासी होने पर भी जिद करके किसी मुस्लिम के घर में ही नहीं, उसी के हाथ का पका खाना भी खा सकते थे। वे श्रीमद्भगवदगीता, वेदांत और क्रिया–योग पर जितना गूढ़ भाषण दे लेते थे, उतना ही भारत की अशिक्षा, निर्धनता और जाति–व्यवस्था पर भी बेबाकी से बोलते थे। 'आओ ! हममें से हर एक प्रतिदिन उन अभागों के लिए प्रार्थना करें, जो गरीबी, पुरोहितवाद और अत्याचार के शिकार हैं। मैं ऊंचे वर्ग के लोगों और धनियों में धर्म–प्रचार करने के स्थान पर उन्हीं के बीच धर्म–प्रचार करना अधिक उपयुक्त समझता हूं। सामाजिक, राजनीतिक या

आध्यात्मिक इन सबकी प्रगति का एक ही आधार है और वह यह है कि मैं और मेरे भाई एक हैं। यह तमाम देशों और तमाम जातियों के लिए सत्य है।

यदि पूरी की पूरी एक शताब्दी बीत जाने पर 'विवेकानंद–विचार' को समग्रता में कम से कम शब्दों में समझना हो तो बिना किसी झिझक के कहा जा सकता है कि उन्होंने हजार वर्ष से गुलामी में जी रही जनता में ऐसा आत्मविश्वास जगाया, जिसकी बराबरी कोई और नहीं कर सकता। 'द वंडर दैट वाज इंडिया' के सुविख्यात लेखक–इतिहासकार डॉ. ए.एल. बॉशम जो कोलकाता के एशियाटिक सोसायटी की 'विवेकानंद पीठ' में भी कार्यरत रहे, ने भारतीय ज्ञान–अध्यात्म परंपरा में 'विवेकानंद' होने के अर्थ को सबसे सही ढंग से पहचाना है। 'अपनी पीढ़ी के किसी भी आचार्य से कहीं अधिक, विवेकानंद ने भारतवर्ष को स्वाभिमान सिखाया, अपने देशवासियों को अपनी परंपरागत संस्कृति, अपने परंपरागत मूल्य और अपना परंपरागत जीवन दर्शन अपनाने की कहीं अधिक प्रेरणा दी, परंतु साथ ही यह भी कहा कि उन्हें वैसे का वैसा ही ग्रहण मत करो, वरन् उन्हें आवश्यकतानुसार गढ़ लो, बदल लो, सूखी टहनियों को काटकर नयी शाखाएं उगा लो, पाश्चात्य एवं अन्य स्त्रोतों से ग्रहीत नवीन विचारों को यहां–वहां आरोपित कर लो, इसके लिए भारतवर्ष अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा स्वामी विवेकानंद का कहीं अधिक ऋणी है।'

वास्तव में, विवेकानंद उस भारतीय ऋषि परंपरा के अंतिम वाहक के रूप में स्मरण आते हैं जिनके जीवन–दर्शन का परम सूत्र है – 'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च'। अपने लिए मोक्ष की राह और समस्त विश्व के कल्याण की सोच का संकल्प–भारतीय ज्ञान चिंतन का यह सार–सूत्र ही स्वामीजी के जीवन का ध्येय था। भारतीय चिंतन परंपरा में विवेकानंद का महत्त्व केवल ऐसे स्वामी के रूप में नहीं है कि उन्होंने शिकागो में विश्व धर्म सम्मेलन में हिंदू धर्म पर अद्भुत भाषण दिया और न ही केवल इसलिए है कि वे भारतीय वेदांत दर्शन के ज्ञाता और व्याख्याता थे, बल्कि इसलिए कि उन्होंने भारतवर्ष की दरिद्रता, अशिक्षा और सामाजिक असंगतियों के विरुद्ध यहां के युवाओं का खुला आह्वान किया। वे रूढ़ अर्थों में स्वतंत्रता सेनानी नहीं थे लेकिन नेताजी सुभाषचंद्र बोस जैसे असंख्य स्वातंत्र्य योद्धाओं की मूल प्रेरक शक्ति थे।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं)

वेदांत कोई पाप नहीं जानता, वो केवल त्रुटि जानता है और वेदांत कहता है कि सबसे बड़ी त्रुटि यह कहना है कि तुम कमजोर हो, तुम पापी हो, एक तुच्छ प्राणी हो और तुम्हारे पास कोई शक्ति नहीं है और तुम ये वो नहीं कर सकते ।

(स्वामी विवेकानंद)

वीर सेनापति लाचित बरफुकन

— नीरज श्रीवास्तव

असम के लोग तीन महान् व्यक्तियों का बहुत सम्मान करते हैं। प्रथम, श्रीमत् शंकर देव, जो पंद्रहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म के महान प्रवर्तक थे। दूसरे, लाचित बरफुकन, जो असम में सबसे वीर सैनिक माने जाते हैं। और तीसरे, लोकप्रिय गोपीनाथ बारदोलोई, जो स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान अग्रणी नेता थे।

असम के इतिहास में तेरहवीं शताब्दी का समय बहुत ही अस्थिर रहा है। इस शताब्दी में असम के इतिहास एवं जन–जीवन में एक अजीब सा मोड़ आ गया था। उत्तरी बर्मा में इरावती नदी के किनारे बसे प्रागभान या पांरा राज्य के "शान" जाति की एक शाखा ताई अहोम के लोगों ने पाटकाई पर्वतमाला के दर्रे से असम में प्रवेश किया। "शान" वंश का राज्य निष्कासित राजकुमार चुकाफा अपने कुछ विश्वासी साथियों के साथ असम पहुंचा और उत्तरी–पूर्वी कोने पर शासन करने वाली चुतीया तथा कछारी जाति को छल–बल से परास्त कर एक वृहद क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। यहीं से अहोमों का असम में प्रवेश का इतिहास शुरू होता है। अहोमों ने असम में लगभग 600 वर्षों तक राज किया। यह कालखंड सुव्यवस्था, वैभवशाली वास्तुकला, सुदृढ़ शासन प्रणाली, साहस, दूरदर्शिता एवं बुद्धि के कारण इतिहास के पन्नों पर हमेशा अमर है। इसी वीर जाति के एक अमर वीर तथा प्रबल पराक्रमी अहोम सेनापति थे– लाचित बरफुकन, जिनकी वीर गाथा असम के इतिहास में सुनहरे अक्षरों से लिखी गई है। लाचित बरफुकन तामुली बरबरूवा के सात पुत्रों में से एक थे। उनमें विवेक और बल का मणिकांचन संयोग देखा जा सकता है। लाचित बरफुकन के हृदय में असीम उत्साह और देश–प्रेम चिर प्रवाहित थे, जहां निजी स्वार्थ का कोई स्थान नहीं था। लाचित बरफुकन ने कला, शास्त्र और युद्ध कौशल की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने अहोम स्वर्गदेऊ (राजा) के सोलधारा बरूवा पद अर्थात् निज सहायक के समतुल्य पद से अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। अहोम शासन व्यवस्था में इसे किसी भी राजनैतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण सीढ़ी माना जाता था। इसके बाद अपनी योग्यता एवं कार्य दक्षता से घोड़ा बरूवा (शाही घुड़सवार रक्षक दल के अधीक्षक) आदि पदों पर आसीन रहे। उनके पिता मोगाड़ तामुली बरबरूवा भी एक सच्चे देशभक्त थे, जो कि राजा प्रताप सिंह के शासन काल में बरूवा अर्थात् ऊपरी असम के राज्यपाल तथा अहोम सेना के मुख्य सेनापति थे, लाचित बरफुकन के भाई लालुकखोला बरफुकन तथा बादुली बरफुकन भी वीर देशभक्त थे। उनकी बहन पाश्वरी गाभरू का विवाह अहोम स्वर्गदेऊ (राजा) जयध्वज सिंह के साथ हुआ था। लाचित बरफुकन का जन्म 1612 ई. में हुआ। पिता की तरह लाचित भी असाधारण बुद्धि एवं प्रतिभा के धनी थे। अहोम प्रणाली में कार्य–निपुणता एवं दक्षता के आधार पर व्यक्ति को पद दिया जाता था। लाचित बरफुकन की कार्यकुशलता से प्रभावित होकर राजा चक्रध्वज सिंह ने सोने की हत्थे वाली तलवार (देडदाड) और पारंपरिक वस्त्र देते हुए राजा सेनापति पद पर नियुक्त किया। असम समय–समय पर मुस्लिम आक्रांताओं का आक्रमण झेलता रहा और उसका मुंहतोड़ जवाब भी देता रहा। कई बार मुगल काफी सफलतापूर्वक अहोमों की राजधानी गड़गांव तक चढ़ गए थे किन्तु पराक्रमी अहोमों ने उन्हें पराजित कर खदेड़ दिया।

औरंगजेब जब दिल्ली का बादशाह बना तो उसने पश्चिम असम पर आक्रमण कर अपने कब्जे में कर लिया और रशीद खां को वहां के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया। लेकिन अहोम के राजा चक्रध्वज सिंह (1663–1669) को मुगलों के अधीन रहना स्वीकार नहीं था। चक्रध्वज सिंह ने मुगलों से लड़ने के लिए सेना का पुनर्गठन कर नौशक्ति को बढ़ाया और अपने मंत्री मोमाई तामुली बरबरूवा के पुत्र लाचित को अपना

बरफुकन (सेनापति) बनाया। और पूरी तैयारी के साथ मुगलों पर आक्रमण कर अगस्त 1667 में असमी सेना ने गुवाहाटी में पुनः प्रवेश कर मुगलों को मनाह नदी के पार खदेड़ दिया। उधर मराठा वीर शिवाजी के आगरा दुर्ग से पलायन करने से मुगल बादशाह औरंगजेब परेशान था, इधर असम में हुई मुगलों के हार से वह और तिलमिला गया। उसे संदेह था कि शिवाजी के पलायन में आमेर के मिर्जा राजा जय सिंह के पुत्र राम सिंह ने सहायता की है। परंतु वह उसे प्रत्यक्ष रूप से सजा देता तो राजपूत सेना में विद्रोह का भय था, इसलिए उसने राम सिंह को असम जैसे खतरनाक मोर्चे पर भेज दिया। पटना से राम सिंह बंगाल के नवाब और औरंगजेब के मामा शाइस्ता खां से ढाका जाकर मिला और उसकी भी सैन्य सहायता ली। मुगलों की हार को जीत में बदलने के लिए वह धुबरी के रंगामाटी पर अधिकार कर 1669 ई में गुवाहाटी के उत्तर पार अठियारी पहाड़ तक आ पहुंचा।

औरंगजेब के शासन काल में मुगलों ने 12वीं बार राम सिंह के सेनापतित्व में इस राज्य में आक्रमण किया। राजा चक्रध्वज सिंह ने लाचित बरफुकन को रामसिंह से मुठभेड़ के लिए भेजा। वीर लाचित युद्ध के प्रारम्भ में ही अपनी योग्यता और साहसिकता का परिचय देने लगे। बांदबारी और काजली नामक दो स्थान मुगलों से मुक्त, कराकर वहां प्राप्त, युद्ध सामग्रियां तथा अन्यान्य वस्तुएं राजा को भेज दी गईं। गुवाहाटी पहुंचकर लाचित बरफुकन ने गुवाहाटी और पाण्डु पर अधिकार कर लिया। यहां भी सामान और धन की प्राप्ति हुई। केवल पैसों को छोड़कर शेष सामान राजा को भिजवा दिया गया। रखे हुए पैसों को उन्होंने अपनी सेना में बांट दिया। इससे उनके विशाल हृदय की उदारता का पता चलता है। इस कार्य से सेना भी अपने सेनानायक पर और अधिक विश्वास करने लगी। उनमें कार्य–उत्साह दुगुना हो गया। इसके बाद कई युद्धों में पराजित होकर मुगल सेना मानाह नदी के तट पर जा पहुंची। यहां भी बरफुकन के युद्ध कौशल्य और तेज ने मुगल सेना को मात दे दी। मुगल सेनापति सैयद साना और सैयद फीरोज कई हजार सेना के साथ बंदी बना लिया गया। गुवाहाटी को निचली असम की राजधानी घोषित कर दिया गया। उधर पराजय की खबर से तिलमिला कर औरंगजेब ने प्रतिशोध की मानसिकता से रामसिंह को विशाल सेना के साथ असम पर अधिकार हेतु भेजा। अहोम स्वर्गदेह ने भी साइकिया (इस अधिकारी के पास सौ सिपाही होते हैं) हजारिका (इस अधिकारी के पास हजार सिपाही होते हैं), राजखोवा (इस अधिकारी के पास 3 हजार सिपाही होते हैं),फुकन (इस अधिकारी के पास 6 हजार सिपाही होते हैं) आदि को सेनानायक लाचित के साथ देने के लिए भेजा। लाचित बरफुकन ने अपने विलक्षण दूरदर्शी योजना से उत्तर–दक्षिण तथा नदी के चारों ओर से शत्रु की सेना को रोकने के लिए सेना की अलग–अलग टुकड़ियां तैनात कर दीं। इनके अविचलित दृढ़ धैर्य एवं युद्ध कौशल ही अहोम गौरव की धुरी है। सुनीति कुमार कहते हैं– "असम के सैनिक संगठन और शासन पद्धति अहोमों की ही देन है। केवल असम ही नहीं बल्कि समूचे भारतवर्ष में ऐसी व्यावहारिक, इतनी विस्तृत और सुदक्ष पद्धति इसके पहले कभी देखने को नहीं मिली थी। अहोम इतने शक्तिमान थे कि उन्होंने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी, उसका नाम एक पूरे राष्ट्र के रूप में उन्हीं से संबद्ध हो गया।"

मुगल सेनापति राम सिंह असम आ पहुंचे। लाचित बरफुकन ने मुगल सेना के युद्धकौशल और साहस को मापने के लिए तेजपुर के पास कम सेना सहित दो फौजों के साथ युद्ध किया। मुगल सेनापति, बरफुकन की इस रणनीति को भांप नहीं पाए और हार का मुंह देखना पड़ा। अहोम सेना की तोपों की गोलों से राम सिंह के भांजे की मृत्यु हुई, तो राम सिंह ने रसीद खां को दो बार बुलावा भेजा। उस समय रसीद खां गीत वाद्य में व्यस्त थे और जाने से इनकार कर दिया। इसी बात पर राम सिंह और रसीद खां में विवाद हो गया। रसीद खां राम सिंह को छोड़कर अपने देश वापस लौट गया। जब मुगलों में इस तरह का वाद–विवाद चल रहा था तो अहोम के सभी अधिकारी और सेना श्रद्धा एवं भक्ति के साथ लाचित बरफुकन के आदेश का पालन कर रहे थे। जो सेनानायक अपने अधीन अधिकारियों और सेनाओं के हृदय में श्रद्धा, भक्ति और विश्वास का पात्र बन जाते हैं, उनकी विजय तो निश्चित ही है। चारों तरफ से हारकर मुगल सेना ने अब किसी प्रकार से–छल–बल–कौशल्य से–गुवाहाटी पर अधिकार करने का निर्णय किया। मुगल सेना गुवाहाटी पर

आक्रमण करने के लिए आगियाठंटी नामक स्थान के पास एकत्र हुई। लाचित और राम सिंह की सेनाएं ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारों पर खड़ी थी। ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी तट पर इटाखुली दुर्ग पर स्वयं लाचित अपने सरदारों और सैनिकों के साथ डटे थे। ब्रह्मपुत्र में नावों का बेड़ा तैयार खड़ा था। लाचित को पता चला कि ब्रह्मपुत्र के उस पार स्थित अमिनगांव के पास एक दुर्ग की प्राचीर कमजोर है। उसकी मरम्मत का काम उन्होंने अपने मामा को सुपुर्द कर कहा, "मामा यह काम रात–दिन एक करके किसी भी तरह सुबह तक पूरा हो जाना चाहिए। शत्रु का क्या भरोसा कब अचानक हमला कर दे। यह याद रखना कि दुश्मन की सेना आपसे दूर नहीं है। यह अत्यंत ही आवश्यक और गुरुतर कार्य है, इसलिए आपके जिम्मे किया है।"

लाचित रात को अचानक काम देखने आए। काम बंद देखकर उनकी आंखों में लहू उतर आया। सोए हुए मामा को जगाकर लाचित ने पूछा–मामा ! काम कैसे बंद है? शत्रु दहलीज पर खड़ा है और तुम काम छोड़कर चैन की नींद सो रहे हो? "अरे लाचित, तुम! जो काम बाकी रह गया है उसे अभी आंरभ कर देता हूं। मैं बहुत थक गया था, इसलिए आराम करने चला आया। लगता है मेरे पीछे दूसरे लोग भी सो गए। तुम चिंता मत करो, मैं अभी काम शुरू कर देता हूं।"

"तुम जैसे लोगों की वजह से ही देश परतंत्र होता है। मौत और दुश्मन कभी पूछ कर नहीं आते हैं? गद्दार ! मेरे लिए देश से बढ़कर मामा नहीं। इतना कहकर तलवार के आघात से मामा का सिर धड़ से अलग कर दिया। यह दु:साहस देखकर सभी के सभी अवाक् रह गए। सैनिकों के कौतुहल को शांत करते हुए लाचित ने आज्ञा दी– अपना समय नष्ट मत करो और जल्द से जल्द इस गद्दार की लाश को मेरे सामने से हटाओ।" अब तक काम फिर से शुरू हो चुका था और सूर्योदय के पहले दुर्ग की अभेद्य प्राचीर की मरम्मत पूरी हो गई। वह दुर्ग "मोमाइकारा गढ़" कहलाने लगा।

लाचित ने मुगल सेना से लड़ने के लिए कूटनीति अपना रखी थी। संकट दिखे तो कछुए की तरह अपने खोल में सिमट जाओ और अवसर देखकर शत्रु पर आक्रमण कर उसे नुकसान पहुंचाओ। राम सिंह और उसकी सेना इस लुका–छिपी के खेल से तंग आने लगी। सन् 1669–70 दो सालों तक छुटपुट लड़ाइयां चलती रही। आखिर में हताश होकर राम सिंह ने भेंट नीति का सहारा लिया। लाचित के नाम एक पत्र लिखकर उनके सहयोगी सरदार मिरि सन्दिकै फूकन के हाथों में चालाकी से उसे पहुंचाया।

पत्र में लिखा था,

"लाचित बरफुकन, कल ही तो तुमने एक लाख रुपए लेकर मान्य किया था कि युद्ध नहीं करूंगा। विश्वास है कि मुगल सेना से केवल युद्ध का दिखावा मात्र करते हुए अपने वचन का पालन करोगे।"

तुम्हारा शुभचिंतक

राजा राम सिंह

मिरि ने वह पत्र स्वर्गदेव चक्रध्वज सिंह के पास गढ़वाल भेज दिया। राजा के संदेह को अतन बुढ़ागोहॉई ने समझाकर दूर किया लेकिन फिर भी राजा ने मुगल सेना से तत्काल मैदानी युद्ध का फरमान भेज दिया।

प्रजा के प्रति निष्ठा

लाचित शुरू से ही जानते थे कि खुले मैदान में मुगल सेना को मात देना मुश्किल है, लेकिन गढ़गांव से मिले आदेश पर उन्हें आक्रमण करना पड़ा। लड़ाई में 10 हजार सैनिक मारे गए, इससे लाचित शोकमग्न हो गए, और उनके आंखों में आंसू आ गए। अपनी जान बचाने के लिए रामसिंह ने लाचित को फिर एक संदेश भेजा–मैं सब लोगो को मुंह मांगा धन दूंगा। केवल गुवाहाटी मुझे सौंप दो। मैं संधि कर वापस लौट जाऊंगा। इसका लाचित बरफुकन ने उत्तर दिया– "हमारे स्वर्गदेव उदयगिरि पूर्व के राजा और तुम्हारे बादशाह औरंगजेब अस्त गिरि (पश्चिम) के राजा। तुम और हम तो सेवक हैं। हम सेवकों के बीच संधि नहीं हो

सकती। " इस बीच चक्रध्वज की मृत्यु हो गई, और उनका भाई उदय सिंह राजा बना। उदय सिंह में चक्रध्वज जैसी योग्यता नहीं थी। वह चापलूसों से घिरा था, प्रजा के कष्ट बढ़ गए थे। बड़े–बड़े सरदारों और मंत्रियों के परिवार उसके द्वारा लांछित हो रहे थे। इन समाचारों को सुनकर लाचित बड़े व्यथित हुए और उनका मन एक बार गढ़गांव जाने को हुआ, लेकिन उन्होंने मन में निर्णय किया–"उनकी निष्ठा किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, राज्य व प्रजा के प्रति है। अगर इस समय गुवाहाटी छोड़कर चला जाऊंगा तो सारे बलिदान व्यर्थ चले जाएंगे।"

रामसिंह की समझ में आ गया कि जल युद्ध किए बिना गुवाहाटी को नहीं जीता जा सकता, इसलिए वर्षा काल समाप्त होते ही उसने आक्रमण करने की ठान ली। इसी बीच गुप्तचर ने रामसिंह को बताया–इस समय लाचित बरफुकन आखोईफूटा ज्वर से पीड़ित होकर मूर्च्छा की स्थिति में पड़ा है, उस पर आक्रमण करने का यह अच्छा अवसर है। यह जानकर रामसिंह ने हमला करने का आदेश दे दिया। मुगल नौकाएं, बंदूक और तोपों से मार करती हुई शराईघाट की ओर बढ़ने लगी।

लाचित की बीमारी की बात सैनिकों में दावानल की तरह फैल गई। सैनिक हताश होकर अपनी नावों में उल्टे भागने लगे। यह स्थिति देखकर ब्रह्मपुत्र के उत्तर पार अश्वक्लान्त पहाड़ी पर डरी हुई, असमिया सेना में भी खलबली मच गई। भीषण बुखार में भी लाचित बरफुकन अपने इटाखुली दुर्ग से मुगलों का आक्रमण देख रहे थे। सारी स्थिति को भांपकर वे युद्ध में जाने को तैयार हुए। वैद्य ने लाचित को समझाकर रोकने का प्रयास किया और राज ज्योतिषी ने वैद्य की बात का समर्थन करते हुए कहा कि– मैं आपको युद्ध में जाने की सलाह नहीं दूंगा। मेरी गणना के अनुसार इस समय आपका युद्ध में जाना हानिकारक हो सकता है।

लाचित ने दृढ़तापूर्वक कहा– "इससे बढ़कर क्या हानि हो सकती है कि शत्रु हमारी भूमि को हड़प ले और हम मुंह देखते रह जाएं। यहां बिस्तर पर मरने से तो अच्छा है कि युद्ध करते हुए मरूं। मुझे युद्ध में जाने से कोई नहीं रोक सकता।" बिस्तर से उठने की भी लाचित की अवस्था नहीं थी फिर भी उन्होनें एक सैनिक का सहारा लेकर उठते हुए अपने सहयोगियों से कहा–"तुम मेरा पलंग उठाकर नौका में रखो। इस वक्त एक–एक पल हमारे लिए भारी है, जरा सी भी चूक हुई तो सारी सेना का विनाश निश्चित हैं। सामने देखो, मुगल सेना की नौकाएं तेज गति से आगे उन्मानंद द्वीप तक पहुंच रही है।"

एक ओर ब्रह्मपुत्र में पूर्व की ओर बढ़ती मुगलों की सैकड़ों नौकाएं, दूर भागती असमिया सेना की और दूसरी ओर जलधारा के साथ बहती हुई, एकमात्र नौका पर क्रोध से उन्मंत अपना खड्ग हाथ में लिए ये वीर लाचित बरफुकन। बीमार होते हुए भी वे अकेले दुश्मनों पर टूट पड़े। अपने सेनापति को देखकर अहोम सेना में तीव्र आवेश पैदा हुआ। नौकाओं के मुंह फेर दिए गए। नाव से नाव भिड़ गई। घमासान युद्ध छिड़ गया। लाचित ने अपने सैनिकों को ललकारा वीरो! मुगलों को इस बार ऐसा सबक सिखाओ कि फिर कभी भविष्य में असम की ओर रुख करने का साहस नहीं कर सके। यह आखिरी और निर्णायक युद्ध होना चाहिए। इस अवसर पर चूक गए तो असम की माटी तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगी।

.....बरफुकन की इस वाणी ने असमिया वीरों में नई स्फूर्ति भर दी और वे दुगने जोश के साथ जान की बाजी लगाकर लड़ने लगे। असमिया नौवाहिनी के गोताखोरों ने ब्रह्मपुत्र के अतिप्रवाह में गोते लगाकर मुगलों की अनेक नावों में छिद्र कर–कर उन्हें डुबो दिया।

यही इतिहास प्रसिद्ध "शराईघाट युद्ध" है। यह युद्ध निरंतर चार महीने तक चला। इन चार महीनों के दौरान बरफुकन के विलक्षण नेतृत्व, युद्ध प्रणाली, दृढ़ संकल्प तथा वीरता का पता चलता है। बरफुकन की योजना और कौशल से राम सिंह को प्रत्येक आक्रमण में हजारों सैनिकों को खोना पड़ रहा था। मुगल सेनापति को विजय की कोई आशा नहीं दिख रही थी, तो उसने तीन लाख रुपए में गुवाहाटी खरीदने हेतु संधि भेजा। इसमें भी असफल होकर, रामसिंह ने इस बार सरिप खां नामक सेनापति को सेना सहित नदी के रास्ते नौका से गुवाहाटी भेजा। इसका पता लगते ही बरफुकन ने अति शीघ्र अंधेरी रात में शाल पेड़ के दो लकड़ो और उस पर नगा ढारि (बांस से बनाया गया एक प्रकार की चटाई) बिछाकर बेड़ा बनाया, बीच में बालू भर कर

एक अपूर्व किला तैयार किया। किला बनाने के इस अपूर्व कौशल से सभी चकित रह गए। मुगल–नौकाएं अहोम जल सेना की बाधाओं को तोड़ आगे आने लगी। उस दिन लाचित बरफुकन तेज बुखार से पीड़ित थे। उन्हें जब पता चला कि शत्रु सेना आगे बढ़ती चली आ रही है और अहोम सेना उन्हें रोकने में नाकाम हो रही है, तो उन्होंने बिस्तर समेत उनको नाव रखने का आदेश दिया और चिल्ला–चिल्ला कर कहने लगा, "मुझे स्वर्गदेऊ (राजा) ने मुगलों से गुवाहाटी की सुरक्षा के लिए यहां रखा है। अब मैं गुवाहाटी मुगलों को देकर गड़गांव में अपने परिवार के साथ सुख भोगने जाऊं? मुझे आज मुगल को पकड़कर ले जाने दो। आप लोग जाकर महाराजा को यह संदेश देना। "इतना कहकर बीमार लाचित बरफुकन ने अपनी नाव ब्रह्मपुत्र नदी की मंझधार की ओर बढ़वाई। लाचित बरफुकन के इस आत्मोसर्ग से प्रेरित होकर दूसरे अधिकारी भी अपनी–अपनी नाव लेकर चल पड़े। जल्द ही नदी नावों से भर गई। इसे देखकर सेना में भी जोश बढ़ गया। दोनों तटों से तोपों से गोले बरसने लगे। बिना बाधा के गुवाहाटी पहुंचने की उम्मीद से भरा सरिप खां अचानक यह सब देखकर चौंक गया। तोपों के गोलों से मुगल सैनिक–घोड़ों सहित ब्रह्मपुत्र के गर्भ में विलीन होने लगे। मुगल सेना भागने लगी। इसके बाद ब्रह्मपुत्र के दक्षिण में और एक बड़े युद्ध मे रामसिंह बुरी तरह पराजित हुआ। अंत में सभी प्रयत्नों में विफल होकर 1671 ई. में वह वापस अपने देश चला गया। इस प्रबल आक्रमण से मुगल सेना के पैर उखड़ने लगे। अपने सिपहसालार रहीम खां को असमिया सेना द्वारा मारा गया देखकर वे और हताश हो गए। स्वयं रामसिंह भी इस प्रबल आक्रमण के सामने नहीं टिक पाया। वह समझ गया कि असमिया सेना के साथ जल युद्ध में और जूझना आत्मघात के समान होगा। आखिर उसके सामने शराईघाट छोड़कर पीछे हटने के सिवाय कोई चारा नहीं बचा। ..... लाचित बरफुकन की सेना ने भागती मुगल सेना की नौकाओं और शस्त्रों को लूटने की लाचित बरफुकन से अनुमति मांगी, परंतु लाचित बरफुकन ने कहा– "इन भगोड़ों को लूटकर मैं स्वर्गदेव और अपने मंत्रियों की प्रतिष्ठा पर दाग नहीं लगाना चाहता। जाओ।" शत्रु को असम की सीमा के बाहर मनाह नदी के पार तक खदेड़कर आओ।

मुगल सेना की भारी पराजय हुई। फिर भी वहां से लौटते हुए रामसिंह ने लाचित बरफुकन की भूरि–भूरि प्रशंसा की। लाचित बरफुकन ने युद्ध तो जीत लिया पर अपनी बीमारी को मात नहीं दे सके। आखिर सन् 1672 में उनक देहांत हो गया। भारतीय इतिहास लिखने वालों ने इस वीर की भले ही उपेक्षा की हो, पर असम के इतिहास और लोकगीतों में यह चरित्र मराठा वीर शिवाजी की तरह अमर है। वीर लाचित बरफुकन ने अपना कर्तव्य संपूर्ण रूप से निभाया। उसका जीवन सार्थक हुआ। जन्मभूमि, स्वजाति और राज सभी का उन्होंने महासंकट में त्याग किया। 1667 ई. से 1671 ई. तक इस महापराक्रम वीर देशप्रेमी योद्धा ने जो अकेले किया वह हजार–हजार असमिया मिलकर भी नहीं कर पाते। उनके चरित्र में देशप्रेम, साहस और बुद्धि का त्रिवेणी संगम था। शराईघाट युद्ध के एक साल बाद बीमारी के कारण उनका देहावसान हुआ। लाचित बरफुकन आज भी हममें जीवित है बहुत ही श्रद्धा और विश्वास के साथ। 1672 ई. में राजा उदयदित्य सिंह ने जोरहाट के हूलंगपारा में लाचित मैदान निर्माण करवाया। प्रति वर्ष 24 नवंबर को असम में लाचित दिवस मनाया जाता है तथा राष्ट्रीय सुरक्षा अकादमी के सर्वश्रेष्ठ कैडेट को लाचित बरफुकन स्वर्ण पदक से सम्मानित किया जाता है। इस वीर सेनानायक के प्रति सही सम्मान तभी होगा जब हम भी उनके जैसे नि:श्वार्थ देशप्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा, एकाग्रता और आत्मबलिदान के मर्म को समझकर उसे अपनाने की कोशिश करेंगे।

लाचित बरफुकन देशभक्त और वीर अहोम सेनापति था। उसने शराईघाट में विशाल मुगल सेना से अभूतपूर्व लड़ाई कर गुवाहाटी को बचा लिया। इस वीर सेनानायक को सही श्रद्धांजलि तभी होगी जब हम भी उनके जैसे नि:स्वार्थ देशप्रेम, कर्त्तव्यनिष्ठा, एकता और आत्मबलिदान के मर्म को समझकर उसे अपनाने की कोशिश करेंगे।

(लेखक नेडफी के प्रबंधक हैं)

वाप्कोस लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम - जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय)

जल संसाधन, विद्युत एवं अवस्थापना विकास में अंतर्राष्ट्रीय परामर्शदाता

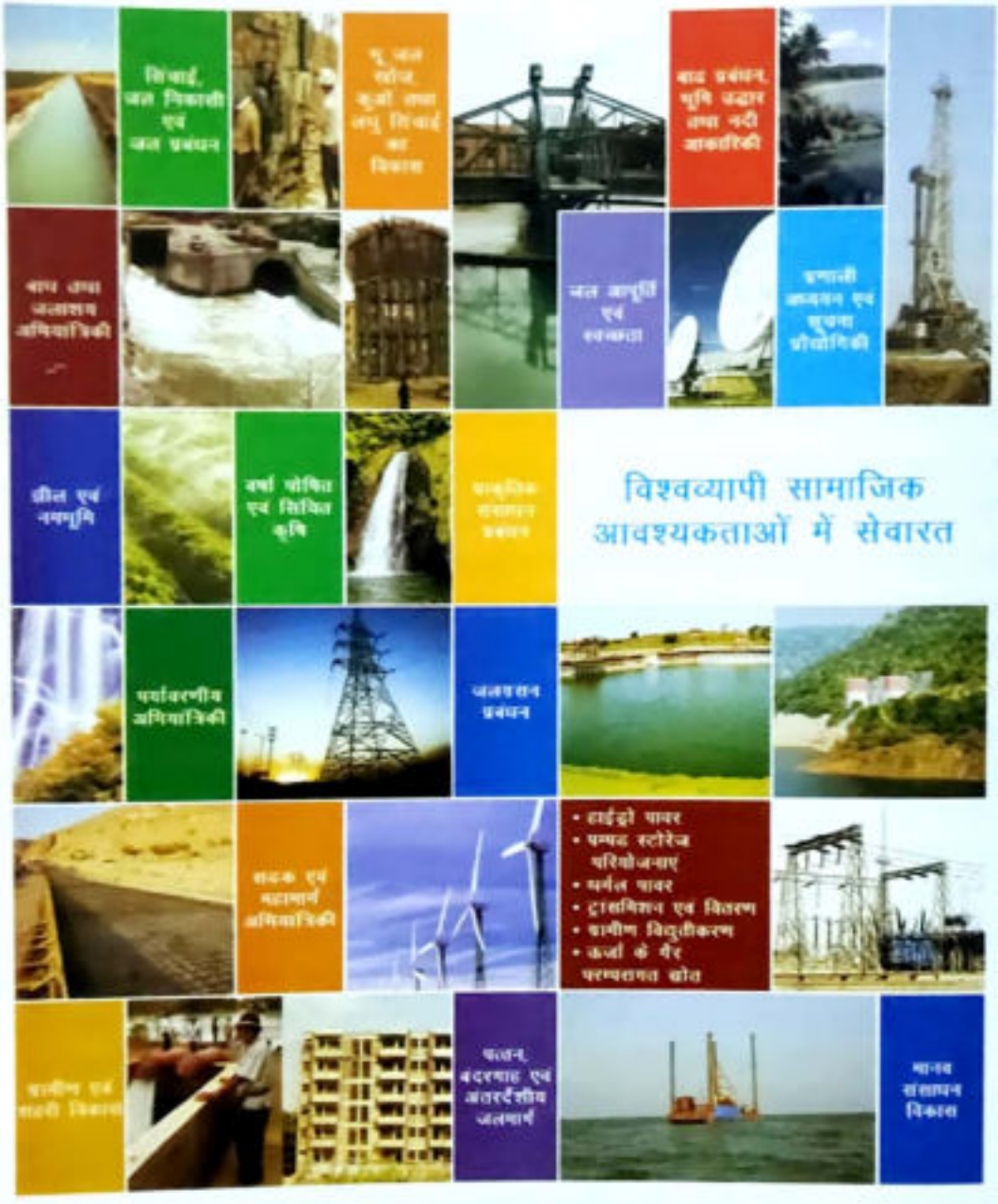

पंजीकृत कार्यालय :
'कैलाश', 5वां तल, 26, कस्तूरबा गांधी मार्ग
नई दिल्ली - 110 001 (भारत)
दूरभाष : +91-11-23313131, 23313881
फैक्स : +91-11-23313134, 23314924
ईमेल : ho@wapcos.gov.in

निगमित कार्यालय :
76.सी, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, सैक्टर-18,
गुड़गांव 122015, हरियाणा (भारत)
दूरभाष : +91-124-2399421, 2399443
फैक्स : +91-124-2397392, 2348027
ईमेल : mail@wapcos.gov.in

वैबसाइट : http://www.wapcos.gov.in

जल है तो कल है

राष्ट्रवाद के प्रखर प्रहरी मालवीय जी

–शिवानन्द द्विवेदी

राष्ट्र के निर्माण की सबसे छोटी इकाई के तौर पर उस राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के वहां के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति समर्पण को ही माना जाता है। व्यक्तियों के परस्पर आचार–व्यवहार की परिणति ही समाज निर्माण के प्रतिफल के रूप में प्राप्त होती है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारंपरिक परिवेश के मानकों की बुनियाद पर ही उस राष्ट्र की समृद्धि का आकलन किया जाना मुनासिब होगा।

आज के तकरीबन डेढ़ सौ साल पहले 25 दिसंबर 1861 को भारतीय भूगोल को एक ऐसा ऐतिहासिक पुरुष प्राप्त हुआ जिसने राष्ट्र निर्माण के हर क्षेत्र में न सिर्फ व्यापक पहल की वरन् अपने उद्देश्यों में सफल भी हुआ। 25 दिसंबर की वो तारीख थी जिस तारीख को महामना पं. मदन मोहन मालवीय के जन्म का दस्तखत इतिहास कर रहा था। आमतौर पर इतिहास में तीन किस्म के लोग शामिल होते हैं, एक वो जो इतिहास में मिट जाते हैं दूसरे वो जो इतिहास बन जाते हैं और तीसरे किस्म के व्यक्ति वो होते हैं जो इतिहास बना जाते हैं। मेरी समझ से पं. मालवीय तीसरे किस्म के महापुरुष थे।

शिक्षा के क्षेत्र से लेकर पत्रकारिता, राजनीतिक आंदोलन एवं परस्पर सहयोग की सामाजिक भावना के विकास के क्षेत्र में मालवीय सरीखा शायद ही कोई अन्य दिखता हो। बतौर शिक्षक अपना कर्म–पथ शुरू करने वाले पं मालवीय ने आगे चलकर वकालत में भी हाथ आजमाया। वकालत में उनकी निपुणता और योगदान की तस्दीक इसी बात से होती है कि चौरी–चौरा काण्ड में जिन डेढ़ सौ लोगों को फांसी की सजा अंग्रेजी हुकूमत द्वारा सुनाई गई थी उन्हें अपने तर्कपूर्ण जिरह से बरी कराया। हालांकि वो सन 1911 में ही वकालत छोड़ चुके थे लेकिन जब अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जंग लड़ रहे अपने लोगों को बचाने बात आई तो वे दुबारा अपनी योग्यता का परिचय देते हुए न्यायालय में वकालत करने पहुंचे। पं. मालवीय सर्वगुण संपन्न व्यक्तित्व थे और उनके जीवन के हर क्षण को एक अलग ओज और अलग तेज से परिभाषित किया जा सकता है। वकालत करने से पूर्व वो पत्रकारिता के क्षेत्र में अहम योगदान दे चुके थे। सन् 1887 में पं. मालवीय द्वारा राष्ट्रवादी साप्ताहिक अखबार 'हिंदुस्तान' का संपादन किया गया एवं इसे सतत् निकालते रहे।

अंग्रेजी हुकुमत की दासता की जंजीरों में जकड़े हिंदुस्तान में चल रही स्वाधीनता की जंग में भी मालवीय जी किसी से पीछे नहीं नजर आते हैं। चूंकि मालवीयजी बेहद सरल, सहज और नरमदिल इंसान थे। यही कारण था कि कांग्रेस में भी उनकी बहुत पूछ होती थी। नरमपंथी विचार का नेता होने के नाते मालवीयजी को 1909 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। इसके अलावा भी चार बार वो पार्टी के अध्यक्ष मनोनीत किए गए। स्वाधीनता की लड़ाई में मालवीयजी के योगदान का अगर जिक्र करें तो इतिहास बेहद समृद्ध एवं गौरवान्वित करने वाला नजर आता है। 1920 के दशक के प्रारंभ में जब महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन चरम पर था तब वे महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में प्रमुख नेता के रूप में उभरकर सामने आए। सन् 1928 में उन्होंने लाला लाजपत राय, जवाहरलाल नेहरू सहित तमाम कांग्रेसी

राष्ट्र के निर्माण की सबसे छोटी इकाई के तौर पर उस राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के वहां के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति समर्पण को ही माना जाता है। व्यक्तियों के परस्पर आचार–व्यवहार की परिणति ही समाज निर्माण के प्रतिफल के रूप में प्राप्त होती है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं पारंपरिक परिवेश के मानकों की बुनियाद पर ही उस राष्ट्र की समृद्धि का आकलन किया जाना मुनासिब होगा।

आज के तकरीबन डेढ़ सौ साल पहले 25 दिसंबर 1861 को भारतीय भूगोल को एक ऐसा ऐतिहासिक पुरुष प्राप्त हुआ जिसने राष्ट्र निर्माण के हर क्षेत्र में न सिर्फ व्यापक पहल की वरन् अपने उद्देश्यों में सफल भी हुआ। 25 दिसंबर की वो तारीख थी जिस तारीख को महामना पं. मदन मोहन मालवीय के जन्म का दस्तखत इतिहास कर रहा था। आमतौर पर इतिहास में तीन किस्म के लोग शामिल होते हैं, एक वो जो इतिहास में मिट जाते हैं दूसरे वो जो इतिहास बन जाते हैं और तीसरे किस्म के व्यक्ति वो होते हैं जो इतिहास बना जाते हैं। मेरी समझ से पं. मालवीय तीसरे किस्म के महापुरुष थे।

शिक्षा के क्षेत्र से लेकर पत्रकारिता, राजनीतिक आंदोलन एवं परस्पर सहयोग की सामाजिक भावना के विकास के क्षेत्र में मालवीय सरीखा शायद ही कोई अन्य दिखता हो। बतौर शिक्षक अपना कर्म–पथ शुरू करने वाले पं मालवीय ने आगे चलकर वकालत में भी हाथ आजमाया। वकालत में उनकी निपुणता और योगदान की तस्दीक इसी बात से होती है कि चौरी–चौरा काण्ड में जिन डेढ़ सौ लोगों को फांसी की सजा अंग्रेजी हुकूमत द्वारा सुनाई गई थी उन्हें अपने तर्कपूर्ण जिरह से बरी कराया। हालांकि वो सन 1911 में ही वकालत छोड़ चुके थे लेकिन जब अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जंग लड़ रहे अपने लोगों को बचाने बात आई तो वे दुबारा अपनी योग्यता का परिचय देते हुए न्यायालय में वकालत करने पहुंचे। पं. मालवीय सर्वगुण संपन्न व्यक्तित्व थे और उनके जीवन के हर क्षण को एक अलग ओज और अलग तेज से परिभाषित किया जा सकता है। वकालत करने से पूर्व वो पत्रकारिता के क्षेत्र में अहम योगदान दे चुके थे। सन् 1887 में पं. मालवीय द्वारा राष्ट्रवादी साप्ताहिक अखबार 'हिंदुस्तान' का संपादन किया गया एवं इसे सतत् निकालते रहे।

अंग्रेजी हुकुमत की दासता की जंजीरों में जकड़े हिंदुस्तान में चल रही स्वाधीनता की जंग में भी मालवीय जी किसी से पीछे नहीं नजर आते हैं। चूंकि मालवीयजी बेहद सरल, सहज और नरमदिल इंसान थे। यही कारण था कि कांग्रेस में भी उनकी बहुत पूछ होती थी। नरमपंथी विचार का नेता होने के नाते मालवीयजी को 1909 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। इसके अलावा भी चार बार वो पार्टी के अध्यक्ष मनोनीत किए गए। स्वाधीनता की लड़ाई में मालवीयजी के योगदान का अगर जिक्र करें तो इतिहास बेहद समृद्ध एवं गौरवान्वित करने वाला नजर आता है। 1920 के दशक के प्रारंभ में जब महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन चरम पर था तब वे महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में प्रमुख नेता के रूप में उभरकर सामने आए। सन् 1928 में उन्होंने लाला लाजपत राय, जवाहरलाल नेहरू सहित तमाम कांग्रेसी नेताओं के साथ मिलकर साइमन आयोग का विरोध किया। तुष्टिकरण की नीति और धार्मिक सद्भाव जैसे मुद्दों पर पं. मालवीय की नजर बेहद दूरदर्शी थी। भारत में आजादी के बाद जो स्थितियां उत्पन्न हुई और आज भी बनी हुई हैं इसका आभास पं. मालवीय को 1916 में ही हो चुका था। तुष्टिकरण के विरोधी मालवीयजी ने 1916 के लखनऊ पूना पैक्ट में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन मंडल का व्यापक स्तर पर

एक समय में एक काम करो, और ऐसा करते समय अपनी पूरी आत्मा उसमें डाल दो और बाकी सब कुछ भूल जाओ।

(स्वामी विवेकानंद)

संपूर्ण क्रांति के पुरोधा लोकनायक जयप्रकाश नारायण

– डॉ. अरुण कुमार भगत

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने "संपूर्ण क्रांति" का आह्वान किया था। वे इस आंदोलन के पुरोधा–पुरुष थे। 'संपूर्ण क्रांति' वस्तुतः सत्ता प्राप्त करने का आंदोलन नहीं था। यह तो व्यवस्था–परिवर्तन और पुनर्निर्माण का पुनीत यज्ञ था। यह युगधर्म का आह्वान था। लोकनायक जयप्रकाश का मानना था कि समाज–जीवन के हर पहलू में इससे क्रांतिकारी परिवर्तन होगा। यह भारत की संपूर्ण जनता की क्रांति है। इस लड़ाई को केवल देश की विभिन्न राजधानियों में ही नहीं बल्कि गांव और शहरों में भी लड़ना होगा।

लोकनायक जयप्रकाश का मानना था कि समाज में जब तक तिलक–दहेज, अस्पृश्यता, ऊंच–नीच की भावना समाप्त नहीं होगी, तब तक संपूर्ण क्रांति का सपना अधूरा ही रहेगा। महंगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, शैक्षणिक अराजकता आदि ने समाज–जीवन को काफी प्रभावित किया था। हर मोर्चे पर संघर्ष करने की जरूरत है। सच पूछा जाए तो व्यक्ति को अपने अंदर भी कुसंस्कारों के खिलाफ मोर्चा खोलना होगा। इसी से व्यक्ति निर्माण होगा और व्यवस्था–परिवर्तन का सपना साकार होगा।

वस्तुतः सन् 1974 आते–आते भारत की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियां काफी खराब हो चुकी थीं। महंगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, भुखमरी और अकाल से जनता त्राहिमाम कर रही थी। देश के अन्य राज्यों की तुलना में बिहार की स्थिति कुछ ज्यादा ही खराब थी। इसके विरुद्ध पटना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने आंदोलन शुरू कर दिया। 'लोकनायक जयप्रकाश नारायण' नामक पुस्तक में डॉ. शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है कि पहले चरण में यह आंदोलन वस्तुतः छात्र आंदोलन था, जिसमें मुख्यतः छात्र संगठनों का नेतृत्व था। सन् 1974 के प्रारंभिक दिनों में इस आंदोलन को जयप्रकाशजी का समर्थन, परामर्श और नेतृत्व आंशिक रूप से प्राप्त था। कुछ ही सप्ताह के बाद कई छात्रेतर नागरिक वर्गों के मुखर, प्रत्यक्ष समर्थन एवं सहयोग इस आंदोलन को प्राप्त हुए तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इस आंदोलन का प्रवेश हुआ। यह छात्र आंदोलन कई मायनों में 'बिहार आंदोलन' बन गया। निश्चित रूप से यह परिवर्तन जे.पी. के व्यक्तित्व से जुड़ाव के कारण ही हुआ।

'संपूर्ण क्रांति' की पटकथा 4, 5 और 6 नवंबर 1973 को अहमदाबाद में संपन्न अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय अधिवेशन में ही लिखी जा चुकी थी। इसमें पारित एक प्रस्ताव में कहा गया, "हाल ही में कुछ वर्षों में हमारे देश के विश्वविद्यालय में अवांछनीय सरकारी हस्तक्षेप की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी है। केंद्रीय सरकारें और राज्य सरकारें विश्वविद्यालय पर अपनी जकड़ मजबूत करने के लिए प्रयत्नशील हैं, ताकि शिक्षा और युवाशक्ति का उपयोग इस प्रकार हो, जिससे सरकार और सत्ताधारी दल के हितों का पोषण हो। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का 21वां अधिवेशन विश्वविद्यालय के सरकारीकरण की बदली प्रवृत्ति का विरोध करता है और मांग करता है कि शैक्षणिक संस्थानों को दलगत राजनीति से मुक्त रखा जाए।"

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् द्वारा पारित एक अन्य प्रस्ताव में कहा गया है कि देश के लगभग सभी विश्वविद्यालय शैक्षणिक संकट से ग्रस्त है। राष्ट्रव्यापी शैक्षणिक संकट के कारण अनेक हैं। इनमें प्रमुख रूप से विश्वविद्यालयों के वातावरण का अलोकतांत्रिक होना है। शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त अराजकता तथा

सरकारी संरक्षण में पनप रहे भ्रष्टाचार ने शैक्षणिक जीवन के सभी पक्षों यथा प्रवेश–परीक्षा, छात्रवृतियों का वितरण, पदोन्नति, विश्वविद्यालयीय निधि के उपयोग आदि सभी को अपनी परिधि में ले लिया है। यहां तक कि अनेक स्थानों पर कुलपतियों की नियुक्ति तक भ्रष्टाचार से प्रभावित रही है। भ्रष्टाचार का यह व्यापक स्वरूप तथा सरकार द्वारा इसे प्राप्त कभी मौन तो कभी मुखर समर्थन शैक्षणिक संकट को गहरा बना रहा है।

इस प्रस्ताव में कहा गया कि राष्ट्रीय–जीवन में शिक्षण संस्थाओं की अपेक्षित भूमिका की दृष्टि से यह घातक है। इसके लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों को भ्रष्टाचार से मुक्त कराया जाए। दलगत संबंधों की पूर्ति के लिए शिक्षा क्षेत्र को सांप्रदायिक तुष्टीकरण का साधन बनाया जा रहा है। इसके लिए संभावित आर्थिक संरचना हो तथा उसी के अनुरूप शिक्षा–व्यवस्था में निश्चित समयबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत आमूल परिवर्तन किया जाए।

इस प्रस्ताव के अंत में कहा गया है कि अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् अपनी सभी इकाइयों को निर्देश देती है कि शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनमत जागरण करें एवं पूरी शक्ति से संघर्ष करें। 21वें अधिवेशन की साधारण सभा इस दिशा में देशव्यापी कार्यक्रम निश्चित करने का अनुरोध करती है।

सन् 1974 तक देश की सरकारी व्यवस्था काफी भ्रष्ट हो चुकी थी। सर्वोदय नेता जयप्रकाश नारायण ने देश के विभिन्न भागों में घूम–घूमकर इसके विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने युवकों से क्रांतिकारी कदम उठाने का आह्वान किया। लोकनायक जयप्रकाश नारायण का वाराणसी से जारी एक बयान आर्यावर्त में 9 जनवरी 1974 को प्रकाशित हुआ। इसके अनुसार उन्होंने कहा कि राजनीतिक दलों द्वारा संचालित जनतंत्र से जनता उब चुकी है। युवकों को चाहिए कि वे इस मौके का लाभ उठाकर क्रांतिकारी कदम उठाएं। देश की जनता उनसे आज यही अपेक्षा रखती है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने कहा कि भ्रष्टाचार को मिटाए बगैर गरीबी दूर नहीं हो सकती है। राजनीतिक परिणामों की परवाह किए बगैर प्रधानमंत्री अगर चाहें तो इसे दूर करने के लिए सख्ती से कदम उठा सकती है, लेकिन हमें विश्वास है कि वे ऐसा नहीं करेगी। भारतीय समाज में नेताओं की कोटि में भारी गिरावट आ गई है। चरित्र–निर्माण के दौर में वे बहुत पीछे छूट गए हैं। ऐसे नेताओं के बल पर देश का भविष्य कभी भी उज्ज्वल नहीं हो सकता। अतः वर्तमान जनतांत्रिक प्रणाली से लोगों की आस्था भी घटने लगी है।

उसी दिन 9 जनवरी 1974 को हिंदी के 38 प्रसिद्ध लेखकों सुमित्रानंद पंत, महादेवी वर्मा, राजकुमार वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, इलाचंद्र जोशी ने एक वक्तव्य जारी कर लेखकों की समस्याओं पर विचार करने तथा सामाजिक और साहित्यिक पतन के विरुद्ध खड़े होने के लिए लेखकों का आह्वान किया। वक्तव्य में कहा गया कि स्थिति भयंकर होती जा रही है। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में तानाशाही तरीकों का छद्म प्रयोग किया जा रहा है। सीधी तानाशाही व्यवस्था से यह स्थिति अधिक खतरनाक है।

वक्तव्य में कहा गया, "आज हर प्रकार के लेखकीय हित खतरे में है। जिस दिशा में वर्तमान शासन सत्ता चला रही है और आर्थिक ढांचा विकसित हो रहा है तथा जिस प्रकार के रिश्ते लेखक, सरकार तथा प्रकाशन संस्थानों के बीच कायम हो रहे हैं, उनमें लेखक की स्वतंत्रता, उसके हितों और मूल्यों के लिए खतरा हो गया है।"

सन् 1974 के प्रारंभिक दौर में ही महंगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, भुखमरी और अकाल से स्थिति कितनी खराब हो गई थी, इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 14 और 15 जनवरी 1974 ई. को 'आर्यावर्त' में प्रकाशित क्रमशः 'महंगाई कब घटेगी?' और 'स्थिति की गंभीरता को समझें' शीर्षक से दो संपादकीय छापे। इनमें सरकार की अर्थनीति की कटु आलोचना की गई। 'महंगाई कब घटेगी' का कुछ अंश उल्लेखनीय है।

"यह भ्रष्टाचार स्पष्टतः मूल्य–वृद्धि का कारण बनता है, किंतु खास राजनीतिक मतवाद के आदर्श में रंगे शासक अपना वह रंग और भी गाढ़ा किए जा रहे हैं और हर क्षेत्र में सरकारीकरण के विस्तार के व्यामोह में

उनका पिंड छूट नहीं पाता. फिर महंगाई कभी घट भी सकेगी, यह सोचना अभी व्यर्थ है। शासक जब तक प्रशासन–तंत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को उन्मूलित नहीं कर देंगे, तब तक उनकी अच्छी–से–अच्छी योग्यताएं भी विफल सिद्ध होंगी और महंगाई बढ़ती जाएगी। प्रशासन–तंत्र को निर्मल करने के लिए राजनीति को व्यवसाय के बदले सेवा का माध्यम बनाना होगा। भ्रष्टाचार को दृढ़ और कठोर हाथ से मार भगाना होगा। जनता निर्मल और निर्भीक शासन की आवश्यकता प्रत्येक स्तर पर महसूस करने लगी है, जिसके बिना गरीबी, बेरोजगारी और महंगाई दूर नहीं हो सकेगी। महंगाई की भीषणता जनता के लिए उत्पीड़न, किंतु शासन के लिए खुली चुनौती है।"

सन् 1974 तक सरकारी व्यवस्था पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी थी। स्थिति यहां तक पहुंच गई थी कि बिहार के मुख्यमंत्री भी इसे स्वीकार करने लगे थे और अपनी परेशानी व्यक्त करने लगे थे। 'सीवान में आयोजित एक जनसभा में उन्होंने प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की चर्चा करते हुए स्वीकार किया कि चारों ओर भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है। उन्होंने कहा कि जब वे किसी भ्रष्ट अधिकारी पर कार्रवाई करते हैं तो चारों ओर से पैरवी पहुंचने लगती है। इससे वे परेशान हो गए हैं। मुख्यमंत्री ने कहा कि सरकार द्वारा चलाई जानेवाली हर योजना भ्रष्ट अफसरों के कारण विफल हो रही है।

17 जनवरी 1974 को बिहार के खाद्य, वाणिज्य और आपूर्ति मंत्री श्री ललितेश्वर प्रसाद शाही से विभागीय प्रभार ले लिया गया। पिछले दिनों विपक्षी नेताओं ने उनकी तीव्र आलोचना की थी। बिहार मंत्री परिषद की बैठकों में भी कतिपय मंत्रियों ने नागरिक आपूर्ति की दिनोदिन बिगड़ती स्थिति और आपूर्ति विभाग के ढुलमुल रवैए पर गंभीर चिंता और क्षोभ प्रकट किया था।

राजनारायण ने बिहार आंदोलन के संबंध में भविष्यवाणी की थी कि 'बिहार आंदोलन' सफल होगा। उसकी सफलता पर देश का भविष्य निर्भर करता है। इस आंदोलन ने एक बात लाकर सामने खड़ी कर दी है– मंत्री, सरकारी अधिकारी, विधायक ही सब कुछ नहीं है, प्रभुसत्ता जनता में है न कि सरकार या विधायकों में।

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता और भूतपूर्व केंद्रीय गृहमंत्री श्री गुलजारी लाल नंदा ने 10 फरवरी 1974 को बिहार राज्य नागरिक परिषद् की बैठक में पटना में स्वीकार किया कि भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में प्रशासन विफल रहा। इस खबर को सभी समाचार–पत्रों ने प्रमुखता से प्रकाशित किया। श्री नंदा ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि आजादी के बाद देश में भ्रष्टाचार और बेईमानी की मनोवृत्ति में भारी वृद्धि हुई है और इस पर प्रशासन भी अंकुश लगाने में विफल रहा है। बिहार के लोकायुक्त श्रीधर वासुदेव सोहनी ने भी साधु–समाज के अधिवेशन में भ्रष्टाचार की बात स्वीकार की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपातकाल घोषित होने के लगभग डेढ़ साल पहले ही देश की स्थिति अराजक हो गई थी। इसके खिलाफ जहां एक ओर छात्र नौजवानों ने आंदोलन खड़ा किया, वहीं, दूसरी ओर संपादकों ने संपादकीय लिखकर सरकार को कठघरे में खड़ा करने का साहस दिखाया।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के अनुसार राजनीति 'व्यक्ति–जीवन' या 'समाज–जीवन' का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। व्यवस्था–परिवर्तन में इसकी महत्ता सर्वोपरि है। इसका अर्थ यह नहीं कि राजनीति ही व्यवस्था–परिवर्तन का सर्वस्व है। उन्होंने संपूर्ण क्रांति के सात भागों में चर्चा की थी– 1.सामाजिक क्रांति 2. राजनीतिक क्रांति 3.आर्थिक क्रांति 4.शैक्षिक क्रांति 5. सांस्कृतिक क्रांति 6. वैचारिक अथवा बौद्धिक क्रांति और 7. नैतिक अथवा आध्यात्मिक क्रांति।

क्रांति का शब्दकोश प्रयुक्त अर्थ प्रायः व्यवस्था में भारी उलट–फेर, लांघना, परिवर्तन, राजव्यवस्था को बदलना, राज–क्रांति आदि से लिया जाता है। जब यह परिवर्तन समाज, अर्थ, राजनीति, संस्कृति, विचार, शिक्षा और आध्यात्म की समग्र कल्पना के साथ हो, तब उसे 'संपूर्ण क्रांति' के रूप में रेखांकित किया जाता है। इन परिवर्तनों के द्वारा व्यक्ति का निर्माण होता है। अर्थात् व्यक्ति परिवर्तन के द्वारा ही संपूर्ण क्रांति की अवधारणा आत्मसात् हो सकती है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने बहुत सोच–विचार कर 'संपूर्ण क्रांति'

शब्द का प्रयोग किया था। उनका मानना था कि केवल राजनीतिक क्रांति से व्यवस्था–परिवर्तन संभव नहीं है। जब तक 'संपूर्ण क्रांति' के माध्यम से व्यक्ति–परिवर्तन अथवा व्यक्ति–निर्माण नहीं होगा, व्यवस्था–परिवर्तन की संकल्पना अधूरी ही रहेगी। इसलिए संपूर्ण क्रांति को उन्होंने व्यवस्था–परिवर्तन का उद्घोष माना था।

डॉ. अमरनाथ सिन्हा ने अपने एक लेख में लिखा है कि 5 जून 1974 को तत्कालीन विधानसभा को भंग करने की मांग को लेकर लोकनायक जयप्रकाश नारायण लाखों लोगों के साथ एक करोड़ बिहार वासियों के हस्ताक्षर युक्त अभियोग–पत्र सरकार के विरुद्ध राज्यपाल को देने के बाद पटना के गांधी मैदान में भाषण कर रहे थे। गांधी मैदान का चप्पा–चप्पा जनसमूह से भरा था। लोकनायक की आवाज गूंज रही थी, लोग मौन हो सुन रहे थे। शांति और गूंज का वह संयोग, लगता था कि किसी भावी गंभीर परिस्थिति का सूचक हो। तभी लोकनायक का एक वाक्य बिजली की तरह कौंध गया–"मित्रो! यह संपूर्ण क्रांति है"। चारों ओर पूरा सन्नाटा छा गया, सनाका–सा! स्वयं लोकनायक एक क्षण रुक से गए, फिर वही गूंज 'हां मित्रों! यह क्रांति नहीं संपूर्ण क्रांति है।' वाणी सिद्ध वाक् प्रकट हो चुका था।

डॉ. सिन्हा के अनुसार पिछले 27 वर्षों की राष्ट्र–पीड़ा के गहन आभ्यंतरीकरण की अभिव्यक्ति है–संपूर्ण क्रांति! क्रौंचवध से शोकातुर क्रौंची के विलाप से विह्वल–उद्वेलित महर्षि बाल्मीकि की वाणी फूट पड़ी थी; जनतंत्र वध से शोकातुर भारतीय जन के क्रंदन से विह्वल–उद्वेलित जयप्रकाश की वाणी फूट पड़ी–मित्रो! यह संपूर्ण क्रांति है। बाल्मीकि की वाणी काव्यकल्प वाली थी, जयप्रकाश की वाणी राष्ट्रकल्प की वाणी है। दोनों में शोक, आक्रोश एवं संकल्प का संश्लेष देखा जा सकता है।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपनी पुस्तक 'संपूर्ण क्रांति' में लिखा है कि संपूर्ण क्रांति के लिए लोकशक्ति का जागरण महात्मा गांधी का सपना था और वही उनकी साधना थी। सत्ता को परिवर्तन का माध्यम न मानकर सेवा, सहकार और संघर्ष को उन्होंने सामाजिक–परिवर्तन का साधन बनाया था और यही कारण था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महात्मा गांधी ने कोई पद स्वीकार नहीं किया, बल्कि कांग्रेस को विघटित कर जन–सागर में कूद पड़ने की सलाह दी थी। अतः संपूर्ण क्रांति का यह आंदोलन गांधीजी की मृत्यु के साथ ही अधूरी रह गई। यह उसी क्रांति का ही अगला चरण है, ऐसा कह सकते हैं।

डॉ. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक में लिखा है– लोकनायक की यह मान्यता थी कि हर क्रांति 'अपनी किताब' खुद लिखती है। नई क्रांति पुराने सिद्धांतों और पुरानी परिपाटियों पर नहीं चलती। अतः उन्होंने अपनी संपूर्ण क्रांति की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए टुकड़ों–टुकड़ों में एक किताब लिखी, एक नया 'क्रांति शास्त्र' रचा। 5 जून 1974 के बाद से अपने भाषणों, निबंधों, साक्षात्कारों, प्रेस वक्तव्यों, संभाषणों और जेल डायरी में तथा जनता सरकार के शपथ ग्रहण के समय 'आकाशवाणी' प्रसारणों में, जनता सरकार से मोहभंग होने के बाद, जब–तब जो विचार 'संपूर्ण क्रांति' के संबध में व्यक्त किए वे ही इस अधूरी किताब की पंक्तियां हैं। अनुच्छेद है, परिच्छेद है, जो किताब उनके जीवन–काल में पूरी नहीं हुई। जब क्रांति ही पूरी नहीं हुई तो किताब कैसे पूरी होती?

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर की गई 'संपूर्ण क्रांति' के फलस्वरुप 1977 ईस्वी में सत्ता–परिवर्तन हुआ। यह 'संपूर्ण क्रांति' का एक पड़ाव मात्र था, किंतु दुर्भाग्य से तब के राजनेता ने इसे ठहराव मान लिया। यह ठीक है कि सत्ता–परिवर्तन से व्यवस्था–परिवर्तन में मदद मिलती, यह व्यवस्था–परिवर्तन में सहायक सिद्ध होता किंतु अल्प समय में ही जनता पार्टी की सरकार गिर गई और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की 'संपूर्ण क्रांति' की अवधारणा अधूरी रह गई। वस्तुतः 'संपूर्ण क्रांति' व्यक्ति का जागरण है। जागृत जनमत ही 'संपूर्ण क्रांति' का संवाहक है।

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा में एसोसिएट प्रोफेसर हैं।)

अशोक भगत : अपने संघर्ष से दिखाया आदिवासी समान को विकास का रास्ता

देश भर में चल रही सहिष्णुता और असहिष्णुता की बहस ने उस वक्त देश का ध्यान पद्मश्री श्री अशोक भगत की तरफ आकर्षित किया जब उन्होंने बयान दिया कि पद्म पुरस्कार और अकादेमी पुरस्कार लौटाने वालों को इस समय थोड़ा संयम से काम लेना चाहिए। पद्मश्री श्री अशोक भगत मीडिया से आम तौर पर दूर रहते हैं लेकिन पिछले दिनों सहिष्णुता असहिष्णुता की बहस ने उन्हें आहत किया। इसलिए उन्हें अपना पक्ष रखने के लिए मीडिया के सामने आना पड़ा।

श्री अशोक भगत के अनुसार– पिछले छह–सात महीनों में उन्होंने आदिवासी समाज के बीच बढ़ते हुए समरसता को महसूस किया है। श्री भगत के अनुसार असहिष्णुता की सारी बहस दिल्ली केंद्रित है। आदिवासी और दलित समाज की इस बहस में भागीदारी नहीं है। असहिष्णुता दिल्ली मुम्बई के धनाढ्य तबके के बीच बढ़ी है।

पद्मश्री श्री अशोक भगत ने पद्मश्री पुरस्कार लौटाने वालों से इसे बचाकर रखने का आह्वाहन यह कहते हुए किया कि कल को स्थिति आज से अधिक असहिष्णु हुई तो पद्म और अकादेमी पुरस्कार लौटाकर खाली हाथ हो चुके विद्वानों के पास लौटाने के लिए कुछ नहीं होगा। फिर वे क्या लौटाएंगे? यह सम्मान ब्रह्मास्त्र है। इसे अंत तक उन्हें अपने पास संभाल कर रखना चाहिए। उस समय तक, जब तक सारे रास्ते बंद ना हो जाए। किसी पार्टी को चुनाव में हार दिलाने के लिए इन पुरस्कारों की वापसी ठीक नहीं है। इस तरह की राजनीति में दाखिल होने से विद्वानों को परहेज करना चाहिए।

अशोक भगत का सहिष्णुता के संबंध में दिया गया बयान संभव है कि इस पूरी बहस को समझने के लिए समाज को एक दृष्टि देगा। श्री भगत ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि असहिष्णुता की पूरी बहस मुम्बई और दिल्ली तक केंद्रित है। झारखंड के आदिवासियों के बीच यह बहस का मुद्दा नहीं है। वहां प्रेम है और सौहार्द है। असहिष्णुता महानगरीय फेनोमेना है। इस पर होने वाली बहस को भी महानगरों तक सीमित कीजिए।

झारखंड के आदिवासी सामाजिक कार्यकर्ता श्री भगत नहीं जानते कि इस पूरी बातचीत के दौरान वे यह सब बताते हुए जाने–अनजाने में उस पूरी सहिष्णुता–असहिष्णुता के बहस की हवा निकाल रहे थे, जो पिछले कुछ समय से दिल्ली के तमाम मीडिया हाउसों का प्रिय विषय बना हुआ है।

इसी साल 8 अप्रैल को झारखंड में सामाजिक क्षेत्र में किए गए उल्लेखनीय कार्य के लिए अशोक भगत को राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी से पद्मश्री सम्मान प्राप्त हुआ। श्री अशोक भगत ने अपना सम्मान उस आदिवासी समाज को समर्पित किया है जिनके आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति में सुधार के लिए वे पिछले 32 वर्षों से प्रयासरत रहे हैं।

उन्होंने छात्र राजनीति से अपने सामाजिक जीवन की शुरूआत उत्तर प्रदेश में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के प्रदेश संगठन मंत्री के रूप में काम करते हुए की। बाद में जब झारखंड के अति पिछड़े इलाके गुमला के बिशुनपुर को कर्मभूमि बनाने का निश्चय किया तब उन्होंने सोचा भी नहीं था कि उनकी संस्था 'विकास भारती' आदिवासी सेवा की पूरे झारखंड में मिसाल बन जाएगी। अशोक भगत के साथ छात्र राजनीति प्रारंभ करने वाले कई छात्र नेता आज भारतीय राजनीति में मंत्री पद पर हैं। अशोक भगत चाहते तो वे भी राजनीति की मुख्यधारा में भाामिल होकर, मंत्री और मुख्यमंत्री दौर में भाामिल हो सकते थे परन्तु आरएसएस की प्रेरणा से उन्होंने आदिवासियों के बीच काम करने का निश्चय किया।

25 जुलाई 1951 को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ में जनमे श्री अशोक भगत ने जेपी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1977 से 1980 तक उत्तर प्रदेश में अभाविप के संगठन मंत्री थे। संघ की प्रेरणा से 1983 में उन्होंने गुमला के बिशुनपुर में अपने तीन अन्य साथियों के साथ विकास भारती की नींव डाली। जिन तीन मित्रों के साथ विकास भारती प्रारंभ हुआ था, वे साथी एक एक कर विकास भारती से अलग हो गए लेकिन अशोक भगत आदिवासियों के उत्थान के लिए काम करते रहे। कई विपरीत परिस्थितियों के बावजूद डंटे रहे। जिस क्षेत्र में वे काम कर रहे थे, वह पूरा जंगल क्षेत्र था। इसलिए कई बार ऐसा अवसर भी आया कि भूखे रहकर दिन गुजारना पड़ा। प्रारंभिक समय में बॉक्साइट के ट्रक पर बैठकर ही लोहरदगा से बिशुनपुर पहुंचते थे, उन दिनों आदिवासी समाज के लोग अशोकजी को देखकर भाग खड़े होते थे, परन्तु उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की। बार–बार आदिवासी समाज के साथ संवाद बनाने का प्रयास किया।

1986 का साल श्री अशोक भगत के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण साल था। इसी साल बिशुनपुर के कोयल नदी के तट पर 200 आदिवासियों के बीच उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि जब तक आदिवासियों को दो वक्त का भोजन नहीं मिलेगा, वे भी एक वक्त ही खाएंगे, जब तक उनके तन पर सिला कपड़ा नहीं होगा वे भी एक धोती ही पहनेंगे। आज इस संकल्प के तीसवें साल में भी वे सिले हुए कपड़े नही पहनते। एक धोती पहनते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने आदिवासियों के बीच रह कर उन्हीं की तरह जीवन जीने की आदत डाली। यह सब कर पाना इतना आसान नहीं था। लेकिन अपने धून के पक्के श्री अशोक भगत ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। इन तीस सालों बिशुनपुर में जो खुशहाली देखने को मिल रही है, वह विकास भारती और अशोक भगत की वजह से है। अब इनके कामों की राज्य स्तर से लेकर देश विदेश में चर्चा हो रही हैं। विकास भारती द्वारा बिशुनपुर के गांवों में किया गया जल प्रबंधन, आदिम जनजाति एवं गरीब बच्चों के लिए निःशुल्क स्वरोजगारोन्मुखी शिक्षा, महिलाओं के लिए गांवों के उत्पाद पर आधारित स्वरोजगार आदि की चर्चा देश–दुनिया में अब होती रहती हैं। इसी वर्ष फरवरी में अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा के पूर्व सलाहकार सोनल शाह श्री अशोक भगत से आकर मिलीं। विकास भारती के कामों को देखा और काफी प्रशंसा की। वर्तमान में संस्था की ओर से झारखंड के 24 जिलों के 200 प्रखंडों के 3500 पंचायतों के अंतर्गत 15000 गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, जनसंगठन, ग्राम तकनीक कृषि, बागवानी मिशन, तकनीकी विकास एवं महिला एवं बाल विकास का कार्य बड़े पैमाने पर संचालित किया जा रहा है। श्री अशोक भगत द्वारा इस वर्ष दिया गया नारा 'मेक इन विपेज' को झारखण्ड सरकार ने भी मान्यता दे दी है और उसपर काम करना प्रारंभ कर दिया है।

– आशीष कुमार 'अंशु'

(लेखक 'इंडिया फाउंडेशन फॉर रूरल डेवलपमेंट स्टडी' से संबद्ध हैं एवं ग्रामीण विषयों पर नियमित लेखन करते हैं)

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार

ज़िंदगी इन्द्रधनुष बनाएं !

सम्पूर्ण टीकाकरण से मैं बीमारियों से
बची रहती हूँ और रोज़ स्कूल जा पाती हूँ

धन्यवाद मिशन इन्द्रधनुष

#FullyImmunizeEveryChild

NATIONAL HEALTH MISSION

मिशन इन्द्रधनुष

आइये, हर बच्चे का सम्पूर्ण टीकाकरण सुनिश्चित करें

/Vaccinate4Life /Vaccinate4Life www.missionindradhanush.in

बच्चों को मौत, बाघों को जिंदगी

— उमाशंकर मिश्र

पेशे से डॉक्टर रवींद्र एवं स्मिता कोल्हे चाहते तो किसी बड़े शहर में रहकर आलीशान जिंदगी जी सकते थे। लेकिन, उन्होंने जनजातियों की सेवा को अपना मकसद बनाया और दूरदराज के एक ऐसे इलाके में जाकर रहने लगे, जहां सरकारी कर्मचारियों की पोस्टिंग सजा के तौर पर की जाती है। महाराष्ट्र के अमरावती जिले का एक ऐसा इलाका, जहां बाघों को जिंदगी और मासूम बच्चों को मौत मिलती रही है।

मोबाइल टावर्स के मकड़जाल से दूर मेलघाट के ऊंघते जंगल में पहुंचकर बाहरी दुनिया के लोगों को कुछ वक्त के लिए भले ही सुकून मिलता हो, लेकिन स्थानीय लोगों की जिंदगी यहां आसान नहीं है। महाराष्ट्र के अमरावती जिले के धारिणी तालुका में स्थित मेलघाट को यहां बने टाइगर रिजर्व के लिए भी जाना जाता है। यह एक विडंबना है कि बाघों को बचाने के लिए यहां करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं। लेकिन, उन बाघों को बचाने के नाम पर एक ओर जहां जनजातियों तेन समाज को विस्थापित किया जाता रहा है, वहीं मासूम बच्चों को यहां मौत मिलती है। अमरावती जिला मुख्यालय से करीब 150 किलोमीटर दूर मेलघाट, सतपुड़ा की खामोश वादियों में बसा है। इस जनजातीय अंचल में बहुसंख्य आबादी कोरकू वनवासियों की है। इसके अलावा यहां गोंड, राठिया, निहाल, मोंगिया, गवली, बलई और कलाल समुदाय के लोग भी रहते हैं। सुंदर वादियों के अलावा मेलघाट को कुपोषण, बेरोजगारी, गरीबी, पिछड़ेपन, पलायन, अशिक्षा के लिए जाना जाता है। कुपोषण से जनजातीय बच्चों की मौत के कारण मेलघाट अक्सर सुर्खियों में बना रहा है।

एक ऐसे इलाके में जहां सरकारी कर्मचारियों की पोस्टिंग बतौर सजा कर दी जाती है, वहां एक दंपती महज एक रुपए में गरीब वनवासियों का इलाज सालों से कर रहा है। सन् 1989 में जब सामाजिक कार्यकर्ता डॉ. रवींद्र कोल्हे अपनी पत्नी स्मिता के साथ इस इलाके में कुपोषण के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए आए थे, तो यहां शिशु मृत्यु दर प्रति हजार बच्चों पर 200 थी। इस दंपती ने आदिवासी बच्चों की जिंदगी बचाना और जनजातीय लोगों के जीवन स्तर की बेहतरी को अपना मकसद बना लिया। शायद यही कारण है कि अब यहां शिशु मृत्यु दर घटकर 60 के आंकड़े पर पहुंच गई है।

पहली बार डॉ. कोल्हे की फीस दो रुपए होती है, जबकि इसके बाद मरीज से इलाज के लिए महज एक रुपया लिया जाता है। डॉ. कोल्हे के अनुसार बिना किसी सरकारी मदद के वो वर्षों से इसी तरह असहाय लोगों का इलाज कर रहे हैं। महात्मा गांधी, विनोबा भावे के अलावा डॉ. कोल्हे रस्किन बॉन्ड को भी अपना आदर्श मानते हैं, जिन्होंने कहा था, 'अगर आप लोगों की सेवा करना चाहते हैं, तो वंचित और गरीब लोगों के बीच जाकर काम करो।' डॉ. कोल्हे आज भी रस्किन बॉन्ड की बात पर अमल कर रहे हैं। उन्होंने पेशेवर होने के बावजूद हमेशा धन के मुकाबले सेवा को प्राथमिकता दी। जनजातीय इलाकों में एक आम धारणा है कि इलाज की प्रचलित पद्धतियों की बजाय जनजातीय लोग झाड़-फूंक, ओझा और तांत्रिकों पर ज्यादा भरोसा करते हैं। शुरुआत में डॉ. कोल्हे की भी कुछ इसी तरह की धारणा थी। लेकिन जब उन्होंने स्थानीय लोगों को दवाइयों के महत्व के बारे में बताया, तो बात बन गई। पहले ही दिन से लोग उनके पास इलाज के लिए आने लगे।

डॉक्टर और मरीज के बेहतर रिश्ते में भरोसा रखने की डॉ. रवींद्र कोल्हे की धारणा से उन्हें स्थानीय लोगों के करीब जाने का मौका मिल गया। उनके अपनेपन और दोस्ताना रवैए से जल्दी ही लोग उनसे घुल–मिल गए। हालांकि, शुरू में यह काम आसान नहीं था। कोरकू वनवासियों से जुड़ने और उनकी परेशानियों को समझने में उन्हें करीब ढाई साल लग गए। जब मेलघाट में रहने वाले लोगों को उन पर भरोसा हो गया, तो डॉ. कोल्हे ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पहले दिन उन्हें सिर्फ तीन मरीज मिले। 15 दिन के भीतर करीब 25 मरीज हर रोज इलाज के लिए उनके पास आने लगे। धीरे–धीरे यह आंकड़ा बढ़ता चला गया। डॉ. कोल्हे के अनुसार, "जल्दी ही लोगों को लगने लगा कि मैं गंभीर बीमारियों का इलाज कर सकता हूं। यही नहीं, खेती–किसानी और अपने पशुओं से जुड़ी समस्याओं को लेकर भी लोग मेरे पास आने लगे।" अकोला फार्मिंग इंस्टीट्यूट की मदद से डॉ. कोल्हे एक कुशल किसान भी बन गए। वो बताते हैं कि पहले बार उन्होंने ही मेलघाट में सोयाबीन की खेती शुरू कराई थी।

माथे पर लकीरों के निशान उनके अनुभव की कहानी खुद बयां करते हैं। वो चाहते, तो अच्छी जिंदगी गुजार सकते थे। लेकिन, दुबले–पतले और सामान्य कद के डॉ. रवींद्र कोल्हे और उनकी पत्नी स्मिता कोल्हे पिछले करीब 30 साल से वनवासियों की सेवा के लिए शहर की आरामदायक जिंदगी को छोड़कर दूरदराज इलाके में वनवासियों के बीच रह रहे हैं। एक झोपड़ी में बंधी बकरी और वहां खाना पकाती हुई महिला की ओर इशारा करते हुए डॉ. कोल्हे की आंखें नम हो जाती हैं। वो कहते हैं, "गरीबी का अर्थ तो मेलघाट के गांवों में जाने पर समझ में आता है, जहां पशु और इंसानों को एक ही छत के नीचे रहना पड़ता है। कुपोषण, बेरोजगारी तथा पलायन वहां का पर्याय बन चुके हैं। स्थानीय जनजातीय समाज के पास न तो कोई बैंक बैलेंस है और न ही पर्याप्त जमीन, जिससे उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। स्थानीय कोरकू वनवासियों की खाद्य सुरक्षा का मुख्य आधार सार्वजनिक वितरण प्रणाली और खावटी कर्ज योजना के तहत कुपोषणग्रस्त परिवार को मिलने वाला अनुदान ही हैं।"

बुलढ़ाना के एक रेलवे कर्मचारी के घर में जनमे और डॉक्टर से किसान बने 54 वर्षीय डॉ. कोल्हे को प्रिवेंटिव सोशल मेडिसिन में महारत हासिल है। 30 साल पहले बुलढ़ाना में अपने घर को छोड़कर जब उन्होंने मेलघाट में जनजातीय लोगों के बीच रहने का फैसला किया, तो लोग हैरान रह गए। मूल रूप से नागपुर की रहने वाली स्मिता भी डॉक्टर हैं। रवींद्र कोल्हे ने स्मिता के सामने शादी के लिए अपनी शर्तें साफ तौर पर रख दी थीं। इनमें 400 रुपए महीने के बजट में मेलघाट में रहने, हर रोज 40 किलोमीटर पैदल चलने और दूसरों की भलाई के लिए भीख मांगने के लिए भी तैयार रहने की शर्तें शामिल थीं। स्मिता ने इन सभी शर्तों को मान लिया और डॉ. कोल्हे के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने का फैसला कर लिया। वो आज भी अपने फैसले पर कायम हैं।

डॉ. रवींद्र और स्मिता ने जब मेलघाट में रहने का फैसला किया, तो सड़कों के हालात बदतर थे। दूरदराज के गांवों में पहुंचना आसान नहीं था। उन्हें हरिसल से बैरागढ़ तक 40 किमी पैदल चलकर आना पड़ता था। कोल्हे बताते हैं, "शादी के बाद एक ऐसी घटना हुई, जिसमें खराब सड़क की वजह से हम एक बच्चे की जिंदगी बचाने से चूक गए। इससे बेहद निराशा हुई कि मेलघाट में रहते हुए भी समय रहते हम बच्चे को नहीं बचा सके। भाजपा के नितिन गडकरी नागपुर में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के दिनों से ही स्मिता के दोस्त थे। गड़करी जब राज्य में पीडब्ल्यूडी मंत्री बने, तो वो हमसे मिलने के लिए मेलघाट आए थे। हम जिस झोपड़ी और जिन हालात में यहां रहते हैं, वो देखकर दंग रह गए। उन्होंने हमारे लिए यहां एक बढ़िया घर बनाने की इच्छा जताई। लेकिन, इसके बजाय स्मिता ने उनसे मेलघाट के लिए अच्छी सड़कों की सौगात मांग ली। गड़करीजी ने अपना वादा आखिरकार पूरा किया। आज मेलघाट के 70 प्रतिशत गांव सड़कों से जुड़ गए हैं।"

मेलघाट में कुपोषण के लिए डॉ. कोल्हे सरकारी मशीनरी को सबसे ज्यादा जिम्मेदार मानते हैं। उनके मुताबिक, समेकित बाल विकास परियोजना के तहत हर बच्चे को 13 ग्राम खाद्य तेल मिलना चाहिए। जबकि सरकार हर बच्चे पर महज एक ग्राम खाद्य तेल उपलब्ध करा पाती है। इसी तरह दाल की आपूर्ति भी बेहद कम है। मेलघाट में स्कूली बच्चों को खिचड़ी या फिर चावल पोषाहार के रूप में मिलता है। इसमें दलहन की उपलब्धता बिल्कुल नहीं होती।

आज मेलघाट में 300 से अधिक गैर सरकारी संस्थाएं काम कर रही हैं। इसके बावजूद मानसून के दौरान 60 प्रतिशत बच्चों की मौत यहां निमोनिया के कारण हो जाती है। कुपोषण एक आम बात है। ऐसे में कई बार सवाल उठता है कि क्या मेलघाट में काम करने वाले और लोगों की जरूरत है? जवाब देते हुए रवींद्र कोल्हे कहते हैं कि मेलघाट के लोगों को चैरिटी की नहीं, बल्कि काम की जरूरत है। वो कहते हैं कि बरसात या फिर सर्दी के दौरान कंबल बांट देने से काम नहीं बनेगा, बल्कि लोगों को आत्मनिर्भर बनाने की जरूरत है। पिछले करीब तीन दशक के दौरान डॉ. रवींद्र कोल्हे ने 400 से 450 लोगों की टीम बनाई है, जो लगभग 150 गांवों में फैले हुए हैं। यह लोग वनवासियों को उनकी समस्याओं से खुद निपटने के लिए जागरूक करने में लगे हैं। यही नहीं, यह टीम स्थानीय लोगों को खेती में सुधार के अलावा विभिन्न सरकारी योजनाओं के बारे में उन्हें जागरूक करती रहती है।

मेलघाट यानी सतपुड़ा के घाटों के संगम का स्थान। महाराष्ट्र के अमरावती जिले की चिखलदरा और धारणी तालुका की नीरवता से ओत–प्रोत घाटियां और उनकी गोदी में कलकलाते झरनों की मोहक आवाज, पक्षियों का कलरव, पेड़–पौधों की सैकड़ों प्रजातियां, जीव–जन्तुओं का भरा पूरा संसार और इन सबके बीच पसरा शांत जनजातीय जीवन। जंगल से होकर गुजरने वाली सुनसान मगर बतियाती हुई सड़क, जो मध्यप्रदेश के बुरहानपुर को अमरावती से जोड़ती हैं। इस सड़क के दोनों मुहानों से कई किलोमीटर दूर गहरी घाटियों एवं ऊंची पहाड़ियों पर भी जिंदगी रहती है, लेकिन जीवन यापन के साधन उनसे बेहद दूर हैं। मेलघाट में कुपोषण कोई नई बात नहीं है, बल्कि यह तो गरीब और संतोषी प्रवृत्ति के वनवासियों की नियति बन चुका है, जिसे वे मूक रहकर दशकों से सह रहे हैं। कुपोषण के इतने मामलों के बीच इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि मेलघाट में 11 पीएचसी और 3 उप जिला अस्पताल हैं। इसके बावजूद डॉ. रवींद्र कोल्हे के मुताबिक आज भी 90 फीसदी बच्चों का जन्म घर पर ही होता है, जिनमें से अधिकतर बच्चों की मौत जन्म के पहले महीने में ही हो जाती है।

मेलघाट में वनवासियों की जीविका का एकमात्र साधन खेतीबाड़ी है, जो पूरी तरह से मानसून पर निर्भर करती है। कृषि पर आधारित मेलघाट की अर्थव्यवस्था स्थानीय वनवासियों की गरीबी का एक कारण भी है। यहां अधिकतर परिवारों में 5 से 6 बच्चे होते हैं। बड़े परिवार, निम्नतम भोजन और उस पर संसाधनों का अभाव कुपोषण को जीवित रखने में मददगार साबित हुआ है। बंड्या साने के मुताबिक 1978 में टाईगर रिजर्व बनने के बाद अब तक भूमि के रिकार्ड संबंधी ऑडिट सामने नहीं आने से यहां भूमिहीनों की सही संख्या का पता लगाना मुश्किल है। हालांकि औसतन प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता 3 से 4 एकड़ है। वह भूमि भी पहाड़ी इलाका होने से ऊंची–नीची होने के कारण यहां सिंचाई की समस्या से ग्रस्त है और खेती पूरी तरह से मानसून पर निर्भर है। जिससे बहुसंख्य आदिवासी गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन को मजबूर हैं। अधिकतर वनवासियों के लिए दूध भी एक दुर्लभ खाद्य उत्पाद है। बताया जाता है कि करीब एक दशक पूर्व यहां स्थापित मिल्क कोऑपरेटिव भी बंद हो गई थी। मेलघाट टाईगर रिजर्व बनने से पहले वनवासियों को जंगल में सांभर या फिर खरगोश जैसे छोटे जानवरों के शिकार की आजादी थी। इसके अलावा कई प्रकार के वनोत्पाद भी जंगल से मिल जाया करते थे, जिससे उनकी भोजन संबंधी आवश्यकताएं पूरी हो जाती थी। लेकिन टाईगर रिजर्व बन जाने से जंगलों में आना–जाना और शिकार

प्रतिबंधित हो गया। दूसरी ओर इनकी खाद्य सुरक्षा के लिए क्या किया गया? यह एक बड़ा सवाल है।

खाद्य सुरक्षा के नाम पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत 25 किलो गेहूं और 10 किलो चावल एक परिवार को मिलता है। हजारों ऐसे भूमिहीन इस इलाके में हैं, जिनके पास न तो रोजगार गारंटी कार्ड है और न ही राशन कार्ड। किराए का घर है, जिसमें बिजली नहीं है। सूखे एवं मौसम की मार के बाद जो थोड़ा बहुत अनाज लोगों को मिलता है, उसे चालाक व्यापारी गांवों में जाकर इनसे औने-पौने दामों पर ठग लेते हैं। 'मेलघाट में शिक्षा का स्तर शून्य के बराबर है और यहां का 12वीं पास युवा भी मानसिक गुलामी का जीवन जी रहा है।' 100 दिन की रोजगार गारंटी योजना स्थानीय निवासियों के लिए सफेद हाथी साबित हुई है। सामाजिक कार्यकर्ताओं के मुताबिक स्थानीय लोगों की समस्याओं को यहां कभी उजागर ही नहीं होने दिया गया और शांत प्रवृत्ति के इन जनजाति समुदायों में किसी जनांदोलन का प्रमाण भी नहीं मिलता है। बिजली, पानी और शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों के अभाव में बहुत से डॉक्टर और टीचर मेलघाट आने से कतराते रहे हैं। डॉ. कोल्हे उन्हें अपने दोनों बेटों रोहित और राम का हवाला देते हुए बताते हैं, "उन्होंने यहीं से पढ़ाई की है और आज दोनों अपनी जिंदगी में सफल इंसान हैं। एग्रीकल्चर में डिप्लोमा प्राप्त रोहित मेलघाट में रहकर कृषि को बेहतर बनाने में जुटा है। जबकि राम नागपुर में एमबीबीएस की पढ़ाई कर रहा है। इसलिए यह मानना गलत है कि मेलघाट में शिक्षा की व्यवस्था ठीक नहीं है या फिर यहां बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं। ऐसे में शिक्षकों और डॉक्टरों को यहां आने से कतराना नहीं चाहिए।" अमरावती से चिखलधरा और फिर धारणी तक बहुत कम गांव सड़क के आसपास हैं। अधिकतर गांवों में जाने के लिए ऊबड़-खाबड़ या फिर कीचड़ भरे रास्तों से होकर गुजरना पड़ता है। अधिसंख्य गांवों में बिजली, पानी की भी समस्या है। पुलिस एवं बैंकिंग सेवाओं के लिए लोगों को धारणी तक कई किलोमीटर का पैदल सफर तय करना पड़ता है। पीने का साफ पानी उपलब्ध नहीं है, स्वास्थ्य पर इसके प्रतिकूल प्रभाव से अनजान वनवासी पानी तभी उबालकर पीते हैं, जब वे बीमार पड़ जाते हैं। सड़क निर्माण और बिजली के खंबे भी यहां नही गाड़े जा सकते, क्योंकि टाईगर रिजर्व क्षेत्र होने से ऐसा करना प्रतिबंधित है।

मेलघाट में टाइगर रिजर्व बनाने के नाम पर कुछ समय पहले 33 जनजातीय गांवों को विस्थापित कर दिया गया था। डॉ. कोल्हे जनजातीय लोगों के इस तरह विस्थापन के बिल्कुल खिलाफ हैं। उनके मुताबिक वनवासियों का विस्थापन जंगल और जानवरों को बचाने का सही तरीका नहीं है। वो कहते हैं, जनजातीय लोग किसी कृत्रिम व्यवस्था की बजाय जंगल और जानवरों का संरक्षण बेहतर तरीके से करते हैं क्योंकि वो प्रकृति से सीधे जुड़े हुए हैं। सरकार पैसे का लालच देकर उन्हें मूल आवास से बाहर निकालना चाहती है। जबकि डॉ. कोल्हे इसके खिलाफ हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि जनजातीय लोग शहरी या कस्बाई माहौल में रहने के लिए नहीं बने हैं। डॉ. कोल्हे मेलघाट के वनवासियों के हक की लड़ाई सरकार से भी लड़ते रहे हैं। कुछ समय पूर्व मुंबई हाईकोर्ट ने एक याचिका की सुनवाई करते हुए उच्चपदस्थ अधिकारियों को मेलघाट का दौरा कर स्थिति का जायजा लेने के निर्देश दिए थे। इस मामले की सुनवाई करते हुए माननीय न्यायाधीशों ने टिप्पणी करते हुए कहा कि-'महाराष्ट्र कोई पिछड़ा राज्य नहीं है, जहां कुपोषण से मौतें हो रही हैं।' कोर्ट ने यह भी कहा था "कुपोषण एवं बालमृत्यु को नियंत्रित करने में राज्य की भूमिका संतोषजनक नहीं है और जमीनी हकीकत के आधार पर लगता है महाराष्ट्र सरकार अपने संवैधानिक कर्तव्यों को पूरा करने में फेल हो गई है।" याचिका में आंगनबाड़ियों के बदतर हालातों एवं मातृ सुरक्षा सेवाओं की अनुपलब्धता का भी आरोप लगाया गया था।

डॉ. कोल्हे के अनुसार, "मैं यह दावा नहीं करता कि हमारे काम से ही यहां पर स्थिति में सुधार हुआ है। हमारा काम तो मुख्य रूप से यहां के बदतर हालातों की ओर सरकार का ध्यान खींचना रहा है। हालांकि, अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। सरकार बिल्डिंग तो बना देती है, लेकिन वहां तैनात कर्मचारियों के

व्यवहार में बदलाव लाना सबसे ज्यादा जरूरी है।" बहुत से लोगों ने डॉ. कोल्हे को एनजीओ बनाने की सलाह भी दी। लेकिन, उन्हें ऐसा करना ठीक नहीं लगा, क्योंकि उन्हें लगता था कि एनजीओ बनाने के बाद उनका मकसद उन परियोजनाओं तक ही सिमटकर रह जाएगा, जो निर्धारित वित्तीय सहायता के लिए चुनी जाती हैं। कई लोगों ने डॉ. कोल्हे के मिशन में शामिल होने की इच्छा भी जताई। लेकिन, डॉ. कोल्हे को ऐसा करना स्वीकार नहीं था, क्योंकि वो नहीं चाहते थे कि कोई दूसरा व्यक्ति उन पर आश्रित रहे। उनका मानना है कि एक समय के बाद लोगों को लगता है कि वो अपने मकसद की बजाय किसी और के उद्देश्य के लिए काम कर रहे हैं। ऐसे में वो निराशा से घिर जाते हैं। इसलिए डॉ. कोल्हे अपने साथ काम करने की इच्छा जाहिर करने वालों को खुद अपना लक्ष्य निर्धारित करके उस पर अमल करने की सलाह देते हैं। कोल्हे का मानना है कि इससे उन लोगों का उत्साह बना रहता है और वो बेहतर काम करते हैं।

डॉ. कोल्हे ने जब एमबीबीएस की डिग्री लेने के बाद मेलघाट जैसे दुर्गम इलाके में काम करना शुरू किया, तो लोग उनके पिता को इसके लिए ताना देते थे। एक दिन जब डॉ. कोल्हे के सराहनीय काम के एक अवार्ड दिए जाने की खबर अखबार में प्रकाशित हुई, तो पिता की छाती गर्व से फूल गई। इससे पहले डॉ. कोल्हे ने कोई अवार्ड स्वीकार न करने का फैसला किया था। लेकिन, जब उन्होंने देखा कि पिता को इससे खुशी मिलती है, तो उन्होंने अवार्ड स्वीकार करना शुरू कर दिया। डॉ. कोल्हे कहते हैं, 'अवार्ड ग्रहण करने से अगर मेरे शुभचिंतकों को खुशी मिलती है, तो इसे स्वीकार करने में भला मुझे क्यों ऐतराज होगा।' हालाकि, इन सबके बीच डॉ. कोल्हे को इस बात की खुशी है कि जनजातीय लोग अब पहले से ज्यादा जागरूक हैं और शिक्षा के प्रति उनका लगाव भी बढ़ रहा है। क्या आपको नक्सलियों से भी कभी कोई चेतावनी मिली है? इसके जवाब में डॉ. कोल्हे कहते हैं, "नक्सलियों के साथ हमारा कोई टकराव नहीं है। शायद वो भी समझते हैं कि हम समाज के भले के लिए काम कर रहे हैं।"

(लेखक अभाविप के पूर्व कार्यकर्ता हैं। फिलहाल वो एक प्रतिष्ठित हिंदी दैनिक के संपादकीय विभाग में कार्यरत हैं और कोटा–राजस्थान स्थित वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय में डॉक्टरल फेलो के तौर पर शोधरत हैं। मीडिया स्टडीज, हिंदी वेब पत्रकारिता, न्यू मीडिया, मीडिया कन्वर्जेन्स, विकास पत्रकारिता, कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था उनके रूचि के विषय हैं।)

(लेखक हिंदी दैनिक अमर उजाला में कार्यरत हैं और कोटा स्थित जनसंचार विभाग, वीएमओयू में शोधार्थी हैं)

जो अग्नि हमें गर्मी देती है, हमें नष्ट भी कर सकती है; यह अग्नि का दोष नहीं है।

(स्वामी विवेकानंद)

युवा शक्ति की अब चिंता मुक्ति

- 'हरियाणा खेल एवं शारीरिक उपयुक्तता नीति–2015' लागू।
- समेकित कौशल विकास योजना के तहत पानीपत, गुड़गांव, फरीदाबाद, हिसार, भिवानी, अम्बाला और रोहतक में वस्त्र, कताई, बुनाई और हथकरघा सम्बन्धी पाठ्यक्रम शुरू।
- 50,000 सरकारी नौकरियों की भर्ती केवल मैरिट पर शुरू।
- बॉक्सिंग व एथलेटिक्स की रोहतक में तथा कुश्ती की सोनीपत में राष्ट्रीय अकादमियों की स्थापना।
- घरोंडा में पहली एन.सी.सी. अकादमी।
- 23 नए डिग्री कॉलेज और तीन नए लॉ कॉलेज के लिए अनापत्ति प्रमाण–पत्र ज़ारी।
- 13 नए राजकीय तथा 75 निजी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान शुरू।
- नौकरी के लिए इंटरव्यू के अंक 12% तक।
- दिसम्बर 2016 तक सभी स्कूलों में डेस्क।
- औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में पहली बार ऑनलाइन दाखिला।

Happening HARYANA

Global Investors Summit, 07 & 08 March 2016
Pravasi Haryana Divas, 09 March 2016

To register, please visit www.happeningharyana.org or scan QR code

युवाओं के प्रेरणास्रोत नेताजी

– अवनीश राजपूत

कोई भी देश या समाज हो उसके सामने सबसे अहम प्रश्न यही रहता है कि उसका युवा वर्ग राष्ट्र निर्माण में क्या भूमिका निभाएगा। कोई भी देशहितैषी कभी यह नहीं चाहेगा कि उसके समाज का युवा दंभी और आत्म–केंद्रित हो, तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति हेतु देशहितों की अनदेखी करे। कोई नहीं चाहेगा कि उसका अपना युवा वर्ग पौरुषहीन हो और उसकी कथनी और करनी में फर्क हो। हर समाज की स्वाभाविक अपेक्षा रहती है कि उसका युवा भविष्य को गढ़ने वाला, वीरता, शौर्य, पराक्रम, समर्पण से ओतप्रोत होकर राष्ट्र निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाए। यह अपेक्षा इसलिए भी स्वाभाविक है कि हर विवेकशील व्यक्ति अच्छी तरह जानता है कि यदि युवा वर्ग गुमराह हो गया तो देश के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। यह बात कहने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए कि वर्तमान नीतियों के दम पर युवाओं में राष्ट्रभक्ति पैदा करने का सपना देखना ठीक उसी प्रकार होगा जैसे बबूल के बीज बोकर आम के मीठे फल चखने की आशा करना। युवाओं के समक्ष गलत आदर्शों को महिमामंडित कर राष्ट्र की आशा का आधारस्तंभ नहीं बनाया जा सकता। उसके लिए तो यही आवश्यक है कि उनके युवा–मन को राष्ट्रभक्ति की ज्वाला से आलोकित करने वाले नायकों के चरित्र को आदर्शरूप में उनके सामने लाया जाए। ऐसे चरित्र जिनकी प्रेरक जीवन गाथाओं को सुनकर युवा–मन बलिदान और समर्पण की भावनाओं से उद्वेलित हो उठे, जिनके चरित्र के पावन यज्ञकुण्ड में सारे कलुष जलकर भस्म हो जाएं।

परंतु यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि देश के लिए समर्पित युवा पीढ़ी किस तरह तैयार की जाए। आज युवाओ में व्याप्त अनुशासनहीनता, दंभ, स्वार्थ–परायणता, स्वाभिमान–शून्यता आदि के लिए इस पीढ़ी को दोषी ठहराते हैं लेकिन क्या वास्तव में हमने कभी इसके लिए कोई सार्थक प्रयास किए हैं। क्या कभी राष्ट्र–निर्माण में युवाओं की भूमिका को लेकर कोई गंभीर बहस चलाई है। आजादी के बाद देश की दशा और दिशा तय करने की जिम्मेदारी जिनके ऊपर सौंपी गई क्या उन्होंने अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन पूरी ईमानदारी से किया। युवाओं में देश–प्रेम और भारतीयता की अलख जगाने के लिए क्या किसी महानायक को हमारे इतिहासकारों ने सही रूप से चित्रित किया। इन सबकी जड़ों में जब हम जाते हैं तो स्पष्ट रूप से दिखता है कि हमारी पूरी शिक्षा प्रणाली ही राजनीति की शिकार है। जिन महानायकों से देश की युवा पीढ़ी प्रेरणा ले सकती है उनके बारे में लेखन का काम एक विशेष मानसिकता के शिकार लोगों के हाथों में सौंप दिया गया।

राष्ट्र नायकों की एक लंबी श्रृंखला रही है जिन्होंने इस देश के लिए अपना सबकुछ हंसते–हंसते न्यौछावर कर दिया। इनके अंदर वो कसक थी जो गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी मां भारती को हर हाल में आजाद देखना चाहते थे। इन्होंने आजादी के नाम पर समझौते नहीं, लड़ाइयां लड़ी। इन्होंने मातृभूमि के लिए संधियां नहीं की बल्कि अपना बलिदान दिया। ऐसे ही एक महानायक थे नेताजी सुभाष चंद्र बोस... जिनके 'जय हिंद' के उद्घोष मात्र से ही युवकों में भारत माता की विजय की अदम्य आकांक्षा व संकल्प पैदा होता था। सुभाष ने पिता की चुनौती स्वीकार कर आईसीसी की परीक्षा तो विदेश जाकर उत्तीर्ण कर ली परंतु उच्च पद संभालने का आमंत्रण दिए जाने पर भी उन्होंने स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस का जन्म 23 जनवरी 1897 को उड़ीसा में कटक के एक संपन्न बंगाली परिवार में हुआ था। बोस के पिता का नाम जानकीनाथ बोस और मां का नाम प्रभावती था। जानकीनाथ बोस कटक शहर के मशहूर वकील थे। प्रभावती और जानकीनाथ बोस की कुल मिलाकर 14 संतानें थीं, जिसमें 6 बेटियां और 8 बेटे थे। सुभाष चंद्र उनकी नौवीं संतान और पांचवे बेटे थे।

नेताजी की प्रारंभिक पढ़ाई कटक के रेवनशॉ कॉलेजिएट स्कूल में हुई। तत्पश्चात् उनकी शिक्षा कलकत्ता के प्रेजिडेंसी कॉलेज और स्कॉटिश चर्च कॉलेज से हुई। बाद में भारतीय प्रशासनिक सेवा (इण्डियन सिविल सर्विस) की तैयारी के लिए उनके माता–पिता ने बोस को इंग्लैंड के कैंब्रिज विश्वविद्यालय भेज दिया।

अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों के लिए सिविल सर्विस में जाना बहुत कठिन था किंतु उन्होंने सिविल सर्विस की परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया।

1921 में भारत में बढ़ती राजनीतिक गतिविधियों का समाचार पाकर बोस ने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली और शीघ्र भारत लौट आए। सिविल सर्विस छोड़ने के बाद वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ जुड़ गए। सुभाष चंद्र बोस महात्मा गांधी के अहिंसा के विचारों से सहमत नहीं थे। वास्तव में महात्मा गांधी उदार दल का नेतृत्व करते थे, वहीं सुभाष चंद्र बोस जोशीले क्रांतिकारी दल के प्रिय थे। महात्मा गांधी और सुभाष चंद्र बोस के विचार भिन्न–भिन्न थे लेकिन वे यह अच्छी तरह जानते थे कि महात्मा गांधी और उनका मकसद एक है, यानी देश की आजादी। सबसे पहले गांधीजी को राष्ट्रपिता कहकर नेताजी ने ही संबोधित किया था।

1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद उन्होंने राष्ट्रीय योजना आयोग का गठन किया। यह नीति गांधीवादी आर्थिक विचारों के अनुकूल नहीं थी। 1939 में बोस पुनः एक गांधीवादी प्रतिद्वंदी को हराकर विजयी हुए। गांधीजी ने इसे अपनी हार के रुप में लिया। उनके अध्यक्ष चुने जाने पर गांधी जी ने कहा कि बोस की जीत मेरी हार है और ऐसा लगने लगा कि वह कांग्रेस वर्किंग कमेटी से त्यागपत्र दे देंगे। गांधीजी के विरोध के चलते इस 'विद्रोही अध्यक्ष' ने त्यागपत्र देने की आवश्यकता महसूस की। गांधीजी के लगातार विरोध को देखते हुए उन्होंने स्वयं कांग्रेस छोड़ दी।

इस बीच दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया। बोस का मानना था कि अंग्रेजों के दुश्मनों से मिलकर आजादी हासिल की जा सकती है। उनके विचारों के देखते हुए उन्हें ब्रिटिश सरकार ने कोलकाता में नजरबंद कर लिया लेकिन वह अपने भतीजे शिशिर कुमार बोस की सहायता से वहां से भाग निकले। वह अफगानिस्तान और सोवियत संघ होते हुए जर्मनी जा पहुंचे।

सक्रिय राजनीति में आने से पहले नेताजी ने पूरी दुनिया का भ्रमण किया। वह 1933 से 36 तक यूरोप में रहे। यूरोप में यह दौर था हिटलर के नाजीवाद और मुसोलिनी के फासीवाद का। नाजीवाद और फासीवाद का निशाना इंग्लैंड था, जिसने पहले विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी पर एकतरफा समझौते थोपे थे। वे उसका बदला इंग्लैंड से लेना चाहते थे। भारत पर भी अंग्रेजों का कब्जा था और इंग्लैंड के खिलाफ लड़ाई में नेताजी को हिटलर और मुसोलिनी में भविष्य का मित्र दिखाई पड़ रहा था। दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है। उनका मानना था कि स्वतंत्रता हासिल करने के लिए राजनीतिक गतिविधियों के साथ–साथ कूटनीतिक और सैन्य सहयोग की भी जरूरत पड़ती है।

'नेताजी' के नाम से प्रसिद्ध सुभाष चंद्र ने सशक्त क्रांति द्वारा भारत को स्वतंत्र कराने के उद्देश्य से 21 अक्टूबर, 1943 को 'आजाद हिंद सरकार' की। संगठन के प्रतीक चिह्न पर एक झंडे पर दहाड़ते हुए बाघ का चित्र बना होता था। नेताजी अपनी आजाद हिंद फौज के साथ 4 जुलाई 1944 को बर्मा पहुंचे। यहीं पर उन्होंने अपना प्रसिद्ध नारा, 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' दिया।

18 अगस्त 1945 को टोक्यो (जापान) जाते समय ताइवान के पास नेताजी का एक हवाई दुर्घटना में निधन हुआ बताया जाता है, लेकिन उनका शव नहीं मिल पाया। नेताजी की मौत के कारणों पर आज भी विवाद बना हुआ है। हाल ही में उनसे जुड़ी फाइलों के सार्वजनिक होने से यह भ्रम और बढ़ा है, वहीं उस कथित दुर्घटना के बाद भी उनके अस्तित्व की पुष्टि हुई है।

(लेखक 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' पत्रिका के संपादन मंडल सदस्य हैं।)

नीरजा भनोट : अदम्य साहस की भावना

– आकाश कुमार राय

भारत–पाकिस्तान के बीच बेहतर रिश्ते को लेकर लगातार कोशिशें होती हैं, वही कोशिश वर्तमान में भी चल रही है। मगर हकीकत यह भी है कि शांति की बातें.. बंदूक सजे हाथों से नहीं हो सकतीं। बीते दिनों में पाकिस्तान एवं पेरिस में हुए आतंकी वारदातों से दुनिया अब भी सहमी हुई है। सभी जगह सिर्फ इसी बात पर चर्चा है कि आतंकी घटनाओं को कैसे रोका जाए। ऐसे में जब आतंकवाद के शिकार के रूप में भारत और पाकिस्तान का नाम आता है, एक दास्तान मन में स्वतः ही कौंध जाती है। ये कहानी है भारत की वीर बेटी नीरजा भनोट की, जिसने अपनी जान देकर मानवता की रक्षा की थी। जिस तरह अदम्य साहस दिखाते हुए नीरजा वीरगति को प्राप्त हुईं, उसके लिए भारत के साथ पाकिस्तान ने भी आंसू बहाए।

28 साल पहले, पांच सितंबर 1986 को नीरजा ने इस्लामिक आतंकियों से लगभग साढ़े तीन सौ यात्रियों की जान बचाने की कोशिश में अपनी जान गंवाई थी। नीरजा की इस शहादत पर जहां भारत ने उसे अशोक चक्र से सम्मानित किया। वहीं, पाकिस्तान सरकार ने उसे अपने सर्वोच्च नागरिक सम्मान "तमगा–ए–इंसानियत" से नवाजा। जबकि अमेरिका ने नीरजा की वीरता के लिए "जस्टिस फॉर क्राइम अवार्ड" एवं "स्पेशल करेज अवार्ड" दिया। वर्ष 2004 में भारत सरकार ने उनके सम्मान में एक पोस्टल स्टांप भी जारी किया।

भारत में जब भी महिलाओं के सशक्तिकरण की बात होती है तो महान वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरतमहल और रानी दुर्गावती की चर्चा की जाती है। देश की आजादी के स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली इन वीरांगनाओं के अप्रतिम शौर्य से चकित अंग्रेजों ने भी इनकी प्रशंसा की थी। वर्तमान में अपनी वीरता के किस्सों को लेकर यह वीरांगनाएं किंवदंती बन चुकी हैं, जिसमें अब एक नाम नीरजा भनोट का भी जुड़ गया है।

बेटी की बहादुरी पर गर्वित नीरजा के पिता ने कहा था, "नीरजा बहुत संवेदनशील, बहुत सौहार्दपूर्ण और सभ्य थी। वो लोगों के साथ खुशियां बांटने में यकीन रखती थी। उसे उसके उसूल प्रिय थे और उसे उनसे समझौता भी मंजूर नहीं था। ऐसे विचारों वाली बेटी भला कैसे इतने लोगों को छोड़कर भाग सकती थी। इसलिए उसने धैर्य के काम लिया और अपने मंसूबों को अंजाम दिया। हमें अपनी बेटी पर गर्व है।"

मानवता के लिए अपनी जान देकर दुनिया में 'द हीरोइन ऑफ द हाइजेक' का नाम पाने वाली नीरजा भनोट का जन्म सात सितंबर 1963 को चंडीगढ़ में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। नीरजा की शिक्षा भी चंडीगढ़ में ही पूरी हुई। स्नातक की डिग्री हासिल करने के साथ ही घरवालों ने 22 वर्ष की उम्र में उसकी शादी कर दी और नीरजा अपने पति के साथ किसी खाड़ी देश के लिए निकल गई। मगर यह शादी ज्यादा दिनों तक नहीं

टिक सकी और शादी के दो महीने बाद ही वो वापस मुंबई अपने माता–पिता के पास आ गई। इस प्रकार की घटनाओं से लोग जहां अपनी जिंदगी को लेकर अवसाद में घिर जाते हैं या फिर अफसोस करने लगते हैं। मगर नीरजा ने ऐसा कुछ भी नहीं किया, बल्कि उसने खुद को संभालते हुए पैन–एम नामक फ्लाइट में फ्लाइट अटेंडेंट (एयर होस्टेस) की नौकरी ढूंढ ली। मिआमि से ट्रेनिंग करने के बाद भारत लौटी नीरजा पूरी तन्मयता से अपनी नौकरी में जुट गई।

एक ओर जहां नीरजा के माता–पिता उसका 23वां जन्मदिन मनाने की सोच रहे थे वहीं वक्त कुछ और ही इतिहास लिखने में लगा था। नीरजा के तेईसवें जन्मदिन से दो दिन पहले एक दुर्घटना हुई। जिसने नीरजा को एक नया नाम दिया, उसके परिवार को गर्व से सिर ऊंचा करने की वजह दी और साथ ही तत्कालीन सरकार को शर्मिंदगी की एक वजह भी।

पांच सितम्बर 1986 को चार इस्लामिक आतंकियों ने पाकिस्तान के करांची एयरपोर्ट पर पायलट का इंतजार कर रहे 'पैन एम–73' विमान को गन प्वाइंट पर ले लिया। विमान में लगभग 400 यात्री बैठे थे। आतंकियों ने पाकिस्तानी सरकार पर दबाव बनाया कि वो जल्द से जल्द विमान में पायलट को भेजे, किंतु पाकिस्तानी सरकार ने मना कर दिया। तब आतंकियों ने नीरजा और उसकी सहयोगियों को सभी यात्रियों के पासपोर्ट एकत्रित करने को कहा, ताकि वो किसी अमेरिकी नागरिक को मारकर पाकिस्तान पर दबाव बना सके। हिंसा और भय के इस माहौल के बीच भी नीरजा ने अपनी सूझ–बूझ का परिचय दिया और यात्रियों के एकत्रित पासपोर्ट में से पांच अमेरिकी यात्रियों के पासपोर्ट छुपा दिए और शेष पासपोर्ट आतंकियों को दे दिए। जिसके बाद आतंकियों ने एक ब्रिटिश यात्री को विमान के मुख्य द्वार पर लाकर पाकिस्तानी सरकार को धमकी दी कि यदि पायलट नहीं भेजे तो वह उसको मार देंगे। किंतु नीरजा ने उस आतंकी से बात करके उस ब्रिटिश नागरिक को भी बचा लिया।

आतंकी मांगों और पाकिस्तानी सरकार के इंकार के बीच धीरे–धीरे 16 घंटे बीत गए, मगर अब तक पाकिस्तान सरकार और आतंकियों के बीच बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला। इस दौरान, नीरजा ने चालाकी से जहाज के हाईजैक कोड को चला दिया। जिससे कॉकपिट के तीनों सदस्य दरवाजा बंद कर बचने में कामयाब हुए। मगर जहाज में मौजूद यात्रियों की जान अब भी खतरे में थी। इस्लामिक आतंकियों से मुकाबला करने के लिए जहाज में कोई हथियार भी नहीं था.. और नीरजा के पास सिर्फ एयर होस्टेस की ट्रेनिंग थी। चार–चार हथियारबंद इस्लामिक आतंकियों के मुकाबले में वो कहीं नहीं ठहरती थी। यात्रियों की सुविधा का खयाल रखने की उसकी जिम्मेदारी भी शिफ्ट के साथ खो चुकी थी... यात्रियों की जान बचाना या इस्लामिक आतंकियों से लड़ना भी उसकी जिम्मेदारी नहीं थी। मगर वह उस मिट्टी की बेटी थी जहां रानी पदिमनी, लक्ष्मीबाई और रानी चेनम्मा जैसी वीरांगनाओं ने जन्म लिया था।

ऐसे में नीरजा को किसी भी समय विमान का ईंधन खत्म होने का खयाल आया और उसने साथी परिचायिकाओं को यात्रियों को खाना बांटने का इशारा किया। साथ ही विमान के आपातकालीन द्वारों के बारे में समझाने वाला कार्ड भी देने को कहा। नीरजा को पता लग चुका था कि आतंकवादी सभी यात्रियों को मारने की सोच चुके हैं। खाने के पैकेट बांटने के दौरान यात्रियों को आपातकालीन द्वारों की पहचान भी कराई गई। नीरजा ने जैसा सोचा था वही हुआ, प्लेन का ईंधन समाप्त हो गया और चारों ओर अंधेरा छा गया। अंधेरे का फायदा उठाते हुए नीरजा ने विमान के सारे आपातकालीन द्वार खोल दिए और योजनानुसार

यात्री तुरंत विमान से बाहर कूदने लगे। वहीं नीरजा को विमान से बच्चों के रोने की आवाज सुनाई दी तो वो वापस विमान में उन्हें खोजने के लिए लौट पड़ी। इस वक्त तक पाकिस्तानी सेना के कमांडो भी विमान में घुस गए और उन्होंने तीन आतंकियों को मार गिराया।

इधर नीरजा उन तीन बच्चों को खोज चुकी थी और उन्हें लेकर विमान के आपातकालीन द्वार की ओर बढ़ने लगी तभी चौथे आतंकवादी ने अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी। बच्चों को आपातकालीन दरवाजे की ओर धकेलते हुए नीरजा स्वयं आतंकी से भिड़ गई। मगर नीरजा ज्यादा देर तक आतंकी का सामना नहीं कर सकी और आतंकी की कई गोलियां उसके शरीर को छलनी करती चली गई। तभी पाकिस्तानी कमांडो ने चौथे आतंकी को भी मार गिराया किंतु वो नीरजा को न बचा सके। नीरजा भी अगर चाहती तो वो आपातकालीन दरवाजे से भाग सकती थी, मगर वो मां भारती की सच्ची बेटी थी। उसने अपनी जान के बजाय औरों की जान बचाने का बीड़ा उठाया, जिसमें वो कामयाब भी रही। जिस समय लोग सिर्फ अपने स्वार्थ की सोचते हैं उस दौर में नीरजा ने लोगों को बचाकर देश का मान बढ़ाया। वह वास्तव में स्वतंत्र भारत की महानतम वीरांगना है।

सच तो यह है कि हम में से ज्यादातर लोग ऐसी जीवन–मरण वाली परिस्थितियों से नहीं गुजरते जिससे नीरजा गुजरीं। शायद हम कभी नहीं जान सकेंगे कि उन भयावह लम्हों में नीरजा पर क्या गुजरी होगी और उसके जहन में उस वक्त क्या–क्या आया होगा। पर इतना तो तय है कि उसने आतंवादियों का सामना अद्वितीय हिम्मत और क्षमता के साथ किया। नीरजा ने सिद्ध भी किया कि डर के चेहरे में ही बहादुरी दिखती है।

(लेखक 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' पत्रिका के संपादन मंडल सदस्य हैं।)

जिस तरह से विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न धाराएं अपना जल समुद्र में मिला देती हैं, उसी प्रकार मनुष्य द्वारा चुना हर मार्ग, चाहे अच्छा हो या बुरा भगवान् तक जाता है

(स्वामी विवेकानंद)

ओएनजीसी
ONGC
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
हर गहराई में मिली नये प्रतिमानों की ऊँचाई
गहरे जल संचालनों को बढ़ाने के लिए एफपीएसओ इकाइयों का प्रवर्तन
शीघ्र उत्पादन के लिए अत्याधुनिक रिग माउन्टिड प्लेटफार्म आरएस–12
22.264 एमएमटी कच्चे तेल का उत्पादन – 7 वर्षों में सर्वाधिक
विश्व के सर्वोत्तम में से एक 1.38 का आरक्षित प्रतिस्थापन अनुपात (आरआरआर)
वित्तीय वर्ष 13–14 में 14 खोजों की तुलना में वित्तीय वर्ष 14–15 के दौरान 22 नई खोजें
'फॉर्चून–विश्व की सबसे प्रशंसित कम्पनियां–2014' की सूची में चयनित एकमात्र भारतीय ऊर्जा कंपनी
ईएंडपी कम्पनियों में प्लैट्स द्वारा विश्व में तीसरा स्थान प्राप्त
तेल तथा गैस संचालन कम्पनियों में फोर्ब्स ग्लोबल 2000 सूची–2015 द्वारा विश्व में 18वां स्थान प्राप्त
खोज के लिए साहस | श्रेष्ठता के लिए ज्ञान | उत्कृष्टता के लिए तकनीक
ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड
सीआईएन नं: एल74899डीएल1993जीओआई054155
पंजी. कार्यालय : 'जीवन भारती', टॉवर II, 124– इन्दिरा चौक, नई दिल्ली–110001
फोन : 011–23301000, 23310156, 23721756, फैक्स : 011–23316413 वेब : www.ongcindia.com | /ONGCLimited | @ONGC_
ओएनजीसी कम्पनियों का समूह
ONGC MRPL
OMPL
OPBL
OTPC
tbl
Petronet MHB Limited
MSEZ

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन की निरूपम विभूति : चंद्रशेखर आजाद

–अजीत कुमार सिंह

भारत की स्वतंत्रता के लिए न जानें कितने वीरों ने अपनी जान तक न्यौछावर कर दी। उनमें से अनेक वीरों के नाम भी ज्ञात नहीं है। जिन वीरों के नाम ज्ञात भी है, उन्हें आज हम भूल जैसे गए हैं। उनके आदर्श से आज की युवा पीढ़ी अनजान है। इन विभूतियों के नाम केवल इतिहास के पन्नों तक सीमित रह गए हैं।

भारत का इतिहास रहा है कि यहां कई महापुरुष हुए, जिन्होंने देश की सेवा के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। कई महापुरुषों ने भारत माता को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। उन्ही में से एक वीर शहीद–ए–आजम "चंद्रशेखर आजाद" भी हैं, जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत की नींद हराम कर दी थी।

चन्द्रशेखर अजाद का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बदरका गांव में 23 जुलाई 1906 को हुआ था। आजाद की माता श्रीमती जागरानी देवी ने कभी सपनों में भी सोचा नहीं होगा कि आगे चलकर उनका लाल भारत का इतना बड़ा क्रांतिकारी बनेगा। आजाद के पिता श्री सीताराम तिवारी भीषण अकाल पड़ने के कारण अपने एक रिश्तेदार का सहारा लेकर "अलीराजपुर" रियासत के ग्राम भावरा में जा बसे थे। इस समय "भावरा" मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले में पड़ता है। अंग्रेजी शासन में पले बढ़े आजाद की रगों में शुरू से ही अंग्रेजों के प्रति नफरत थी।

बचपन से दृढ़ निश्चयी

एक बार वनवासी गांव भावरा के कुछ बच्चे मिलकर दीपावली की खुशियां मना रहे थे। किसी बालक के पास फुलझड़ियां, किसी के पास पटाखे थे। बालक चन्द्रशेखर खड़े–खड़े अपने साथियों को खुशियां मनाते देख रहे थे। जिस बालक के पास माचिस थी, वह माचिस निकालता और एक छोर को पकड़कर डरते–डरते माचिस से रगड़ता और रंगीन रोशनी निकलती तो डरकर उसे जमीन पर फेंक देता। बालक चन्द्रशेखर से देखा नहीं गया, वह बोला– "तुम डर के मारे एक तीली जलाकर भी अपने हाथ में पकड़े नहीं रह सकते । मैं सारी तीलियों को एक साथ जलाकर उन्हें हाथ में पकड़े रह सकता हूं "जिस बालक के पास माचिस थी, उसने वह चन्द्रशेखर को दे दी और कहा–"जो कुछ भी कहा है, वह करके दिखाओ तब जानूं।" बालक चन्द्रशेखर ने माचिस की सारी तीलियां निकालकर अपने हाथों में ले ली। उसने तीलियों की गड्डी माचिस से रगड़ दी। भक्क से सारी तीलियां जल उठी। वे तीलियां जलकर चन्द्रशेखर की हथेली को जलाने लगी। असह्य होने पर भी चन्द्रशेखर ने तीलियों को उस समय तक नहीं छोड़ा जब तक कि उनकी रंगीन रोशनी समाप्त नहीं हो गई।

उक्त घटना से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्द्रशेखर बचपन से ही कितने कठोर और दृढ़निश्चयी थे।

चन्द्रशेखर आजाद बड़े होकर संस्कृत सीखने बनारस जा पहुंचे। उनके फूफा पंडित शिवविनायक मिश्र बनारस में ही रहते थे, उनके द्वारा आजाद को कुछ सहारा मिला तथा संस्कृत विद्यापीठ में दाखिला लेकर संस्कृत का अध्ययन करने लगे।

उन दिनों (1921) में बनारस में महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आंदोलन की लहर चल रही थी। 1919 में हुए अमृतसर के जालियांवाला बाग नरसंहार ने देश के युवकों को उद्वेलित कर दिया था। यह आग असहयोग आंदोलन में ज्वालामुखी बनकर फट पड़ी और तमाम अन्य छात्रों की भांति चन्द्रशेखर भी सड़क पर उतर आए। असहयोग आंदोलन में चन्द्रशेखर ने भी सक्रिय योगदान किया। इस दौरान चन्द्रशेखर भी एक दिन धरना देते हुए पकड़े गए। उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने में पेश किया। जहां मजिस्ट्रेट ने चन्द्रशेखर से व्यक्तिगत जानकारी के बारे में सवाल पूछना शुरू किया–

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम आजाद है।"

"तुम्हारे पिताजी का नाम क्या है?"

"मेरे पिता का नाम स्वाधीन है।"

"तुम्हारा घर कहां है?"

"मेरा घर जेलखाना है।"

मजिस्ट्रेट इन उत्तरों से चिढ़ गया और 15 बेंत मारने की सजा सुनाई। जल्लाद जितनी बार बेंत मारता चन्द्रशेखर हर बार "भारत माता की जय" बोलता। बालक चन्द्रशेखर की चमड़ी उधड़ गई परंतु अंत तक वह "भारत माता की जय" बोलता रहा।

इस घटना के पश्चात् बालक चन्द्रशेखर अब चन्द्रशेखर आजाद कहलाने लगा।

सन 1922 में गांधीजी के द्वारा असहयोग आंदोलन को एकाएक बंद कर देने के कारण आजाद की विचारधारा में बदलाव आ गया और वे क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ गए। तभी वे हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के सक्रिय सदस्य बन गए। आजाद ने क्रांतिकारी बनने के बाद सबसे पहले 1 अगस्त 1925 को चर्चित **"काकोरी कांड"** (लखनऊ के निकट काकोरी नामक स्थान पर सहारनपुर लखनऊ सवारी गाड़ी को रोककर उसमे रखा अंग्रेजी खजाना लूट लिया।) को अंजाम दिया। बाद में एक–एक करके सभी क्रांतिकारी पकड़े गए पर आजाद कभी भी पुलिस के हाथ नहीं आये।

इसके बाद 1927 में रामप्रसाद बिस्मिल के साथ मिलकर उत्तर भारत की सभी क्रांतिकारी पार्टियों को मिलाकर एक करते हुए "हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन" का गठन किया। चन्द्रशेखर इस दल के कमांडर थे। वे घूम–घूम कर इस दल के कार्य को आगे बढ़ाते रहे। भगत सिंह व उनके साथियों ने लाहौर में लाला लाजपत राय की मौत का बदला सांडर्स को मार कर लिया। फिर दिल्ली एसेंबली में बम धमाका भी किया। अंग्रेज आजाद को तो नही पकड़ पाए लेकिन बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां एवं ठाकुर रोशन सिंह को 19 दिसंबर 1927 तथा उससे 2 दिन पूर्व राजेन्द्र लाहिडी को फांसी पर लटकाकर मार दिया।

4 क्रांतिकारियों को फांसी और 16 को कड़ी कैद की सजा के बाद चन्द्रशेखर आजाद ने उत्तर भारत के सभी क्रांतिकारियों को एकत्र कर फिरोज शाह कोटला मैदान में एक गुप्त सभा का आयोजन किया। सभी ने मिलकर एक नया लक्ष्य निर्धारित किया– **"हमारी लड़ाई आखिरी फैसला होने तक जारी रहेगी वह फैसला है जीत या मौत"**

दिल्ली एसेंबली बम कांड में आरोपित भगत सिंह, राजगुरू, व सुखदेव को फांसी की सजा सुनाए जाने पर आजाद काफी आहत हुए। वे उत्तर प्रदेश के हरदोई जेल में बंद गणेश शंकर विद्यार्थी से मिले। विद्यार्थी से परामर्श कर वे इलाहाबाद जाकर पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिले। आजाद ने पं. नेहरू से आग्रह किया कि गांधी जी पर लॉर्ड इरविन से इन तीनों की फांसी को उम्रकैद में बदलवाने का जोर डालें। नेहरूजी ने जब बात नहीं मानी तो आजाद ने नेहरूजी से काफी बहस भी की। इस पर नेहरूजी ने आजाद को तत्काल वहां से चले जाने को कहा तो वे भुनभुनाते हुए बाहर निकल गए।

अल्फ्रेड पार्क में अपने एक मित्र सुखबीर से इन सब घटनाओं के बारे में चर्चा कर ही रहे थे कि सीआईडी के एसएसपी नॉट बाबर ने भारी पुलिस बल के साथ अल्फ्रेड पार्क में बैठे चन्द्रशेखर आजाद को चारों ओर से घेर लिया। दोनों ओर से भयंकर गोलीबारी हुई। जब आजाद के पिस्तौल में शेष एक गोली बची तो उन्होंने अंग्रेजों के हाथों गिरफ्तार होकर मरने की अपेक्षा स्वयं पर गोली चला दी। उन्होंने कहा था कि मेरा नाम आजाद है, मैं आजाद हूं और आजाद ही रहूंगा। और इस संकल्प को आखिरकार उन्होंने सिद्ध कर दिखाया तथा भारत माता का यह अनुपम लाल सदा–सदा के लिए इस दुनिया से आजाद हो गया।

चन्द्रशेखर आजाद भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन की निरूपम विभूति है। भारत की स्वतंत्रता के लिए उनका अनन्य देशप्रेम, अदम्य साहस, प्रशंसनीय चरित्रबल देश के युवाओं को शाश्वत आदर्श और प्रेरणा देता रहेगा। आजाद का राष्ट्रप्रेम वंदनीय है। इस वीर शिरोमणि को भारतीय समाज हमेशा याद करेगा।

(लेखक 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' पत्रिका के संपादन मंडल सदस्य हैं)

उठो मेरे शेरो, इस भ्रम को मिटा दो कि तुम निर्बल हो, तुम एक अमर आत्मा हो, स्वच्छंद जीव हो, धन्य हो, सनातन हो, तुम तत्त्व नहीं हो, ना ही शरीर हो, तत्त्व तुम्हारा सेवक है, तुम तत्त्व के सेवक नहीं हो।

(स्वामी विवेकानंद)

छत्तीसगढ़

उच्च शिक्षा हेतु नक्सल प्रभावित क्षेत्रों के बच्चों को शून्य प्रतिशत पर और सामान्य क्षेत्र के बच्चों को एक प्रतिशत रियायती ब्याज दर पर ऋण प्रावधान करने वाला राज्य

- राजकीय विश्वविद्यालयों की संख्या -08
- शासकीय महाविद्यालयों की संख्या-214
- निजी एवं शासकीय महाविद्यालयों की संख्या-472
- बिलासपुर में केन्द्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना।
- बालिकाओं को स्नातक तक नि शुल्क शिक्षा
- 50 इंजीनियरिंग कॉलेज - 16,833 स्वीकृत सीटें
- 51 पॉलिटेक्निक कॉलेजों की संख्या - स्वीकृत सीटें 8,074
- 23 स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम
- 163 शासकीय आईटीआई - स्वीकृत सीटें 18,184
- 96 निजी आईटीआई - सीटें 10,816
- 6 मेडिकल कॉलेज, 6 डेन्टल कॉलेज, 7 आयुर्वेदिक कॉलेज सहित 30 मेडिकल एजुकेशन इंस्टीट्यूट

IIM
AIIMS
NIT
HNLU
IIT
IIIT

VEDANTA IN DAILY LIFE : VIVEKANANDA'S MESSAGE TO INDIAN YOUTH

– Dr. Aditya K. Gupta

Vedanta

By 'Vedanta' we Mean 'the end' or concluding part of the Vedas and by Vedas we mean the accumulated treasury of spiritual laws discovered by different persons in different times. Upanishads are considered having the essence of Vedas' philosophy, so the name 'Vedanta' is given to the philosophy indicated in Upanishads.

Badrayana, the celebrated philosopher of ancient India, who lived in 200B.C., made a great contribution in this regard. He culled out the essence of Vedanta from the vast material of Upanishads, and expressed it clearly and comprehensively in his great work, 'Brahma Sutra',.

Sankara was the first person who wrote extent commentary on Bādrāyan, Knowm as 'Sankara Bhasya'. Sankara's philosophy is called Advaita (Non-dualistic) Vedanta. According to it, the ultimate reality is Atman or Brahman which is pure-consciousness and is devoid of all attributes and all categories of intellect (Nirvishesha). Brahman associated with its potency (shakti) Maya or Mulavidya appears as the qualified Brahman or Ishvara, who is the creator, preserver and destroyer of this world, which is his appearance. The individual soul is not a separate entity but an enmeshed tiny spark of the absolute soul Brahma. It speaks about non-dual or one existence everywhere and the nature of existence is spiritual or consciousness (Brahman).It teaches non-difference and so denies any type of difference at any level.

Vivekananda's contribution to Vedanta Philosophy

Most Important contribution of Vivekananda towards Vedanta (Advaita) was in making it practical for man. He showed with proofs that the philosophy of Advaita Vedanta can work in daily life of Human being and can remove many social evils of society, especially the Indian . Because of this, Vivekananda's philosophy is best considered practical Vedanta.

Practical or Neo-Vedanta

The most important contribution of the New Vedanta is its practicality. It is a call to make the spiritual reality a social reality. For this reason ,it is also called 'Practical Vedanta'.

"These conception of the Vedanta must come out, must remain not only in forests, not only in the cave but they must come out to work at bar and the bench …… with the fisherman who is catching fish and with the students that are studying….."

If any theory is absolutely impracticable, it is not of any value whatever, except as intellectual gymnastic. The Vedanta, as a great philosophy, must be intensely practical. We must be, says Vivekananda, able to carry out it in every part of our lives.

Two basic Ideals of Vedanta

The first ideal to realize is '**to recognize one's divinity**'. The Vedanta says that infinity is our true nature, it will never vanish, it will abide forever. Day and night, says Vivekananda, we have to keep in our mind that 'I' am birth-less death-less, the blissful, the omniscient, the omnipotent, ever-glorious soul.

Now if 'I' am divine essentially, we must have great faith in ourselves. Within ourselves is this eternal bliss, speaking of eternal voice, speaking of eternal freedom; it's music is eternally going on. With this divine spark in us, wee cannot think ourselves weak. This is the greatest error to think oneself weak or sinner. Vedanta teaches us to have faith in ourselves, utter faith in one's immortality and in immense potentialities.

"Strength, strength is what the Upanishads speak to me from every page. This is the one great thing to remember, it has been the one great lesson I have been taught in my life; strength, it says, strength, o man, be not weak"

Now, the faith in ones divinity does not mean selfish faith. It means faith in all. Like my divinity, everybody else is divine in essence and that spiritual content is same in everybody. Vedanta believes in the **doctrine of oneness**. This is second important aspect of practical Vedanta, according to Vivekananda. There are no two in anything, no two lives, nor even two different kinds of life. In Vedas, initially there is talk of heavens and things like that, but later on, when they come to the highest ideals of their philosophy they brush away all these thing. Everything is that one, one life, one world, one existence. Even Animals are not out of that oneness. The difference is only of degree, not of kind.

"The Amoeba and I are the same, the difference is only in degree, and from the standpoint of the highest life, all these differences vanish. A man may see a great deal of difference between grass and the biggest tree but from higher point both will appear much the same. So, from the standpoint of the highest ideal, the lowest animal and the highest man are the same" -

"There is only one life and one world, and this one life and one world is appearing to us as manifold. This manifoldness is like a dream "

Thus keeping his Advaitic trend in mind Vivekananda gave more emphasis on **two principles- one, divinity of man and other animals and second,belief in one existence.** On the basis of these two corner stones of Advaita , Vivekananda develops his own philosophy. He applies these two principles in daily life of human being. This Practical Application was unique in Vivekananda, which differentiates him from other Vedantins. His was not a philosophy where only intellectual problems emerge and which has no concern for life. His Philosophy was meant for society, meant for human being.

Application of Practical Vedanta in society

If we see contemporary Society carefully, we get the glimpse of fear in the minds of people. We are afraid of loosing our happiness, our future, our own people, our near and dear ones. And when suddenly , nature takes this 'subjective ownership' away from us by the dint of Misery, poverty, Accidents- the result is despair. This despair results sometime in suicide and in other extreme steps. All these fears are because of our ignorance 'I think myself body' and all our fears are related directly or indirectly to it. So the first virtue we get from Practical Vedanta is fearlessness. I must have a tremendous belief, says this Vedanta, in our immortality, in our divinity. Ours is immense capacity which is yet to be manifested. What are miseries, what is death in front of almighty soul, which is innate, immortal and Omniscient.

However, by teaching fearlessness, Practical Vedanta does not teach inaction. No, this is not the proper understanding of Vedanta. Rather, it teaches that our actions should be impersonal, unattached. 'I am the same divine being who is the infinite'. By this, we will not loose our personality, rather our personality will be broadened, will be explained. We want to take credit, says Vivekananda, because we think ourselves bodies which are different in everybody. When we realize our divinity, the same content of all existence, all our actions will be impersonal.

Impersonality is the highest logical outcome of Vedanta Philosophy. Whatever is real in this Universe is impersonal. So called personal is nothing but false ego identifications.This realization of Immortality, this great faith in our innate nature, will come by great

understanding. Day and night, we have to think that I am the soul, not the body; I am the same divine spark which is the reality of whole existence. Vivekananda says that this realization will bring great changes in human being's life, there will be positive transformation.

"Think on it day and night; think on it till it becomes part and parcel of your life. Meditate upon it and out of that will come work. "Out of the fullness of the heart the mouth speaketh and out of the fullness of the heart the hand worketh Also... All your action will be magnified, transformed, defied, by the very power of thought"

Those who have got the glimpse of this divinity of existence, have very important duty to convey this knowledge to others. According to Vivekananda, this message should be sent to every man of the society. In case of India, this task will be easy in view of the fact that Indian mind is religious primarily. This message essentially should be conveyed to those who have lost all hope of life's progress, to those who are down-trodden of society and to those who think themselves puppet in the hands of destiny; A Vedantin have to make them realize that they are makers of their own destiny; No help will come from the blue, they will have to make their own path. As they are enough capable of it, as they are divine essentially, nobody can make fool of them . No exploitation, no corruption and no fear will prevail in society.

India, in 21" Century, is badly affected by few big problems, -Terrorism, Naxalism and Corruption. They have almost broken down India's backbone. In addition to certain external and dialogical factors, one thing is common in all three and common point is fear. Fear of identity, fear of inequality, fear of uncertain future and fear of mortality, work behind that. They have lost faith in their capacity and their powers. Vedanta will teach them their divinity and thereby Fearlessness.

The second principle of practical Vedanta i.e. realizing oneness of existence is of utter importance from Indian Society's point of view. Our society is greatly divided on the lines of caste, religion, region etc. Not only division, a widespread violence and exploitation takes place in many cases on the basis of these dividing lines.

Vedanta teaches reality of one existence only and realization of this oneness with so-called 'others' will be the perfect remedy of many social Evils. All is one which manifests itself, either as thought, life, soul, or body and the differences are only in degrees. The difference between lower and higher, virtue and vice, weakness and strength etc. are of degrees only. We have no right to condemn others for their lower position, the difference between me and him is of manifestation only. These differences of caste, race, religion, region, country are not of much importance.

It is also true that a big section of society will not easily accept Vedanta principle of divinity of soul. But then the onus is on those who have known this truth. Not only they should think themselves divine souls, others should be treated in the same way as well. Ultimately, we are one, though expressed in many ways. Vedanta also teaches one existence, one life and one consciousness. Those who have got the glimpse of this truth, cannot discriminate between any two persons.

Now, if we are all one, there can be no question of any privilege. The Discrimination of all types in society are mainly because of the feeling of being privileged. Privilege of being strong, of being higher caste and religion, of wealth and also of ones own region and race. If a man has more money than another, he wants a little privilege over those who have less; Also there is privilege of intellect and of spirituality too. There are some high profile persons in Indian society who claim more knowledge and spirituality and they say–"come down and worship us, ye common heard; we are the messengers of God, and you have to worship us'. No Vedantin can admit privilege of any type, either mental, physical or spiritual; absolutely no privilege for anyone. The same power is in every man, the one manifesting more, the other less; the same potentiality is in everyone. These who are having higher status in society, are these people who got proper opportunity and environment for their progress. This is true with so called higher castes and superior Nations also.

The work of Vedanta is to break down all privileges. This practical side of Vedanta morality is necessary as much today as it ever was, more necessary, perhaps, than it ever was, for all this privilege claiming has become tremendously intensified with the extension of knowledge. In India, which is also the birth place of Advaita philosophy, this morality is vitally needed. Traditionally we had privilege for birth and of spirituality, but in new emerging urban society we have privilege for money also.

"Come out into Universe of light. Everything in the Universe is yours, stretch out your arms and embrace it with love. If you ever felt you wanted to do that, you have felt God"

Out of this love, we can understand what is the meaning of one existence, one reality and feeling of oneness . And with this feeling we can unite those who have been alienated in society because of caste, race, religion, region etc and also because of poor development of them. Not only minorities, lower classes but also those who are engaged in destructive activities like terrorism and Naxalism, should be helped to recognize their divine nature, the essential Goodness about which Gandhi Ji used to say. We, the people of 'Privileged' India should also feel oneness with them. This love should not be based only on any emotional feeling but on the fact that we are all essentially one.

Poverty is still a fact in India. We might be one of the most Industrialized countries in the world , but majority of our people is still living below the poverty line. And this poverty line is not drawn on the basis of any good slandered of life. It is mere on subsistence line. By this fact we can asses the extension of real 'poverty' in our country. We should realize that the basic problem, in addition to political and bureaucratic corruption, lies in our narrow-minded-ness. We do not feel those 'poor people' our own. More than any other thing, we need to create space in our hearts for needy people. But we cannot do that until and unless we feel essential unity with them and here practical Vedanta teaches the way.

Now, what is the remedy ?. Certainly Vedantic Principles of divinity of man and feeling oneness of all existence will work tremendously. These poor people are not different from us. Like Hanuman of Ramayana they have forgotten their powers (here it means' divinity), in the same way privileged people have become ignorant of oneness, the affinity with others. Vedanta will teach to both.

Not only practical Vedanta will work for equality of humanity, its arena expends even to other animals and nature itself. Animals, plants and other constituents of nature are not different from human beings. They are part of one existence. This voice of Vedanta can be heard in such movements as 'Save the Plant', 'Conserve the Forest', 'Preserve the ozone layer', Stop cruelty to Animals, 'One world, one family', and others. Science and Economy' have started witnessing unity of existence by way of Internet and Globalization respectively. The Need of the hour is to realize this oneness in society and religion also. Only then, we can expect India to become a developed country, in real sense.

We are witnessing unification of system in the fields of Economy, Science and Technology. Despite being the Science and Technology of one country, it becomes open for all in the whole world. Economic problems of one region of the world is enough to bring recession in other part of the world. Now, we are realizing that any natural problem is not specified to any particular country or region only and so we are making efforts to save our environment of the Earth together. We are becoming a Global Village only in the field of Economy and Science-Technology. This trend of Globalization need to be extended in the fields of Religion, Race, Caste, Social groups etc. The foundation for social equality should be based on Vedantic principle of Essential oneness of all existence, otherwise it will be mere talk and a dream. And the onus of this change is on Indian Youth who would be the harbinger for making our country 'the great', once again.

(Writer is a Professor in Delhi University)

Sri Mahalaxmi
Jewellers

2724/23, Sarswati Marg, Karol Bagh, New Delhi - 5.
Tel.: 011-45871919, 45871920
E-mail: info@srimahalaxmijewellers.com

www.srimahalaxmijewellers.com

NIVEDITA LOKMATA

– Dr. Anirban Ganguly

The Sahitya Akademi Award for literary excellence in the Bengali language in 1978 went to the late Sankari Prasad Basu (1928-2014) for his multi-volume opus on Swami Vivekananda's life and times – *Vivekananda O Samakalin Bharatbarsha*. In each of the seven volumes Basu, primarily a professor of literature in the University of Calcutta, poured a wealth of information hitherto unknown, on the various dimension of the Swami's life. After an exhausting and often lonely research trudge – lightened only by the labour and kindness of the monks of the Ramakrishna Mission and a large number of ordinary people who were driven to action whenever told that this unassuming professor of literature was in fact "Swamiji's" biographer and was travelling the length and breadth of the country to unravel and discover all possible documents and leads that could shed more light on the Master himself.

Once the volumes began appearing they created a wave in Bengal and in the Bengali literary circles generating not only a great interest in the Swami's life but also giving rise to a multi-dimensional debate on the various angles and interpretations that the author made. Yet, Basu's opus was never translated into other Indian languages or into English so that it could reach a larger audience both at home and abroad. Even on his death, Basu was largely forgotten by Akademi stalwarts despite making such a seminal and epochal contribution to India's cultural history. He was not, as they say, well-connected and rarely cared to visit the hallowed zones of the national capital and never bothered to kowtow to political power and prestige. Moreover Basu refrained or rather could not sing paeans to political masters and thus could not ingratiate or enrich himself in any way.

But Basu per se is not the object of discussion in this column; rather it is the principal personalities around whom his work and life revolved. Apart from writing a detailed multi-volume biography of Vivekananda Basu's another lasting contribution, and one which continues to remain unparalleled, was his multi-volume biography of Sister Nivedita (1867-1911) – *Nivedita Lokmata* – which immortalised in much greater detail than Lizelle Raymond did–Nivedita's life and contribution to India's quest for self-expression–cultural, educational and political.

In fact, had it not been for Basu and later for Pravrajika Atmaprana, the story of the *Lokmata* – one who had inspired scores of Indian leaders from the Lokmanya to the Deshbandhu, to Sri Aurobindo and Gurudev – would have remained untold, unrecorded and forgotten. It was Gurudev Tagore who conferred the epithet of "*Lokmata*" on Nivedita and Basu picked it up and immortalised it in his four volume biography of this Irish catholic turned Hindu, disciple of Swami Vivekananda. But unfortunately, as is the habit with a class of our intellectuals and institutions they control – Nivedita's contribution to the creation of the "Idea of India", or her corpus of work on as varied and intricate subjects as cultural history, education, civic nationalism, cleanliness, women education and empowerment, art, historiography, religious and dharmic debates, Swadeshi and much more remain largely unexplored or unfathomed. It is unknown, for example, that in 1906, it was she who designed a prototype of the national flag with the "*Vajra*" at the centre and wrote a detailed exposition of the centrality and power of that symbol both in Hinduism and Buddhism. Her significance for the "*Vajra*" was striking, "The selfless man is the thunderbolt" for national action. It was that lighting like selflessness which needed to be cultivated among workers of Indian freedom. Nivedita herself often embodied that thunder-like presence, imbued from her Master – her father as she often called Swami Vivekananda.

In a short stay in India of about fourteen years, between 1897 and 1911, Nivedita made lasting contributions to the major fields of national action that defined the early nationalist movement. Be it national education, be it the Swadeshi art and industrial movement, be it sustaining the revolutionary movement or providing succour to the revolutionary nationalists, be it supporting Indian scientific research as she did in the case of Acharya Jagadish Chandra Bose, ensuring that he continues with his path-breaking research and stands up to British, read colonial hegemony, and prove the point of Indian capacities in science and scientific research, Nivedita's imprint is hard to ignore, especially, if one were to disengage oneself from dialectical lenses while studying this phase of India's evolution.

The complete marginalisation of her contribution by the "mainstream" academia and intelligentsia is understandable though. Direct, forthright, unabashed and unrepentant when it came to India and India's interests, image and welfare, it is extremely difficult to stereotype Nivedita into categories. One who was so intricately and intrinsically identified with India's civilisational aspirations, one who so eagerly embraced the Hindu way of life, one who so minutely detailed the civilisational contributions of Hinduism – both in terms of history and religion, her "Cradle Tales of Hinduism", "Footfalls of Indian History" and especially "Kali: the Mother" was staple read once upon a time all over Bengal and other parts of India, while making a great impact abroad in countering false propaganda against the Indian way of life – could not be stereotyped – it was plain impossible.

Nivedita's descriptions of the various facets of our national life caught the essence, the spirit as it were, of our core civilisational construct, identity and expression. She was wholly accepted and absorbed in India, her stay in the "native" quarter of Calcutta, her project of a girl's school in the area, her efforts to create and evolve a national discourse on all issues and subjects that strengthened India's quest for self-hood was not only welcomed but saw genuine and unstinted supported from the people.

So at ease and so accepted was she that Nivedita could easily speak at the temple of Kalighat on Kali and describe her centrality in the evolution of Indian religious experience. For her, India never need be apologetic – this same uncompromising nationalism saw her take on missionary calumny against India on foreign shores. One who simply said, when asked what she would do in India that "My life is given to India. In it I shall live and die", or who, in her daily aspiration meant for nationalists wrote thus, "I believe that India is one, indissoluble, indivisible" and that "national unity is built on the common home, the common interest and common love" and that the "strength which spoke in the Vedas and Upanishads, in the making of religion and empires, in the learning of scholars, and the meditation of the saints, is born once more amongst, and its name today is Nationality" and one who believed that "the present of India is deep-rooted in her past, and that before her shines a glorious future", can hardly be compartmentalised while also being unmanageable for a large section of our self-anointed intellectual-guardians and conscience-keepers who have always worked to negate the India of the past altogether.

Above all, perhaps had it not been for Nivedita, we would not have discovered that Vivekananda which even the most conscientious biographer fails to capture. Who else but Nivedita, herself profoundly and unalterably identified with Bharat, could have written about the Master thus, "There was one thing however, deep in the Master' nature, that he himself never knew how to adjust. This was his love of his country and his resentment at her suffering. Throughout those years in which I saw him almost daily, the thought of India was to him like the air he breathed."

As we inch towards her 150th birth anniversary one would do well to recognise, re-evaluate her life and work and to rekindle a deeper and wider interest in Sister Nivedita. That would, in a sense, be a tribute of gratefulness to her as *Lokmata*.

(Writer is a Director of Shyama Prasad Mukherjee Research Foundation in Delhi)

Hem Chander Vikrmaditya an Epitome of Bravery, Courage, Hardwork and Intelligence

– Manu Katariya

Present day history has forgotten one of our greatest heros of medieval times-Hem Chander Vikrmaditya. He was the last Hindu king of Delhi who ruled most of the North India. Deliberately ignored by present historians, he was the greatest general of his time and is known as "Napolean of india"

North India was socially and politically unstable in the early sixteenth century due to power struggle between mughals and Afghans . Mughals use to spread terror after victory by indulging in ruthless killing and destruction of places of worship. Babur was no different and his barbaric invasion of North India in 1526 had resulted in the destruction, looting and demolition of many Hindu temples in North India. It is well known that the Lord Ram's temple at Ayodhya was destroyed and Babri masjid was constructed there .

Growing up in such an atmosphere, in a devout family of priests, Hemu was filled with patriotic feelings and yearned to take revenge and throw the mughals out of this country. It was therefore natural for Hemu to align with Afghans. During those times the Afghanistan was part of india and Pathans /Afghans were considered natives of the country.

Born in a poor brahmin family he spent his childhood in Rewari. His father Puran Das was a spiritual man and was away from home on religious trips. Therefore Hemu was forced to be the bread winner for his family and started working as a tradesman from early childhood selling vegetables etc. As he grew up he started the supply chain for Sher Shah Suri's Afghan Army. He started his career as a supplier of cereals to Shere Shah's army, moving on to more critical supplies like ingredients for gunpowder etc. Rewari was an important town in medieval times being a vital trading centre.

Portuguese had already established their foothold in Goa,Hemu established trading links with Portuguese and managed to get technical assistance for the manufacture of cannons to supply the Afghan army. For this purpose he developed a foundry at Riwari and started the process of manufacturing good quality cannons. This step not only helped Hemu to prosper but was catalytic in developing Rewari a manufacturing hub.

On Sher Shah Suri's death in 1545, his son Islam Shah became ruler of North India. Islam Shah was highly impressed by the caliber , and administrative skills of Hemu and offered him the post of his personal adviser. He consulted Hemu in matters relating not only to trade and commerce, but also pertaining to statesmanship, diplomacy and general politics. Islam Shah initially appointed Hemu as 'Market superintendent' , to manage commerce throughout his empire. This post gave Hemu the

opportunity to frequently interact with the king, having to apprise him on the trade and commercial matters of the kingdom. Islam Shah held Hemu in great esteem. After serving as Market superintendent for some time, Hemu rose to become Chief of Intelligence. Islam Shah's health deteriorated in 1552 and he shifted his base from Delhi to Gwalior, which was considered safer. Hemu was deputed as Governor of the Punjab to safeguard the region from Mughal invasion. Hemu held this position till the death of Islam Shah on 30 October 1553.

Islam Shah's 12 year old son Firoz Khan who was crowned next king was killed within three days by Adil Shah Suri. The new king Adil Shah took Hemu as his Chief Advisor and entrusted all his work to him appointing him the prime minister and chief of his army. After some time, Adil Shah became insane and Hemu became the de facto king.

Many Afghan governors rebelled and refused to pay the taxes, but Hemu subdued them by force., Some prominent rebels like Sultan Ibrahim Khan, Muhammad Khan, Taj Karrani, Rukh Khan Nurani and other Afghan rebels were defeated and killed at the battle of Chhapparghatta in December 1555, Hemu also routed the Bengal forces under Muhammad Shah, who was killed in the battle.

Writer K.K.Bhardwaj has written an excellent book "Hemu-Napoleon of medieval India" in which he writes that Hemu was a native ruler leading a native Afghan army to victory, in battle after battle. Hemu was popular among all strata of society. Hemu's army consisted of infantry, cavalry, artillery and large elephants. His infantry ran on Portuguese lines. Artillery which Babur the grandfather of Akbar enjoyed over his campaigns against the Lodhi, was not there in this case. General Ram Chandra (Rammaya) and Shadi Khan Kakkar, the Afghan governor from Sambhal were two of his most noted generals who commanded large forces in the second battle of Panipat.

Humayun defeated Adil Shah's brother Sikander Suri, on 23 July 1555 paving the way for the Mughals to regain Punjab, Delhi and Agra after a gap of 15 years. At that time Hemu was in Bengal and when Humayun died on 26 January 1556.Hemu sensed an ideal opportunity to defeat the Mughals at Delhi. He started a Chakravarti Abhiyan march from Bengal through present day Bihar Eastern UP and Madhya Pradesh conquering all before him. Mughal fauzdars abandoned their positions and fled in panic before him. In Agra, an important Mughal stronghold, the commander of Mughal forces Iskander Khan Uzbeg fled after hearing about Hemu's invasion, without a fight.

Etawah,Kalpi, Bayana all in present day central and western UP, fell to Hemu.

In the words of K.K.Bhardwaj, his triumphant march from Bihar to Dilli (Delhi) can be equated to the Italian campaign of Napoleon: "He came, he saw, he conquered". Hemu never saw defeat in battle and went from victory to victory throughout his life (he died in the only battle he lost). Hemu won the loyalty of his soldiers by his ready distribution of the spoils of war among his soldiers.

After winning Agra, Hemu moved for the final assault on Delhi. Tardi Beg Khan, who was Governor of Delhi, for Akbar, wrote to Akbar and his regent, Bairam Khan that Hemu had captured Agra and intended to attack the capital Delhi, which could not be defended without reinforcements. Bairam Khan, realising the gravity of the situation, sent his ablest lieutenant, Pir Muhammad Sharwani, to Tardi Beg. Tardi Beg Khan summoned all the Mughal commanders in the vicinity to a war council for the defence of Delhi. It was decided to stand and fight Hemu and plans were made accordingly.

The Mughal army was huge. Abdullah Uzbeg commanded the Van, Haider Muhammad the right wing, Iskander Beg the left and Tardi Beg himself the centre. Uzbeg with Turki Cavalry in the van and Iskander Beg from left wing attacked and drove back the Hemu's forces before them and followed far in pursuit. In

this assault the victors captured 400 elephants and slew 3000 men of the Hemu's army. Imagining victory already gained many of Beg's followers dispersed to plunder the enemy camp and he was left in the field thinly guarded. All this time Hemu who had been holding 300 choice elephants and a force of select horsemen as a reserve in the centre promptly seized the opportunity and made a sudden charge upon Beg with this reserve confusion ensued, resulting in a defeat for the Mughals.

Hem Chandra won Delhi after a day's battle on 6 October 1556. Some 3000 soldiers died in this battle. However, Mughal forces led by Tardi Beg Khan vacated Delhi after a day's fight and Hemu Chandra entered Delhi, victorious under a royal canopy.

After this victory Hemu decided to become formally the king of India. Therefore after consulting Brahmins it was decided to have Rajyabhishake on 7Th.Oct.1556 an auspicious day.

It was a grand affair where thousands guests were invited which included large number of Rajput kings, Afghan chiefs, all his Senapatis, large number of scholars and Pandits. at Purana Qila (present old fort). The coronation was in traditional style with the chanting of Vedic Hymns and washing of Hemu under the Royal Umbrella to become Chhatrapati and formally become the Emperor of India. He assumed the title of Vikramaditya to be known as Maharaja Hemchandra Vikrmaditya.

He made various appointments on the occasion, appointing his brother Jujharu Rai, governor of Ajmer and his nephew Rammayya, a general in his army. He also appointed his various supporters as Chhaudhuris and Muqqudams based on their merit. He also introduced coinage bearing his image.

Thus Hemu became the first Hindu emperor of North India afer 350 years. According to Abul Fazl, in the Akbarnama, after winning Delhi Hemu had planned to attack and win Kabul. He made several changes in his army, including the recruitment of many Hindus, but without the dismissal of any Afghan.

On hearing of Hemu's serial victories and the fall of large territories like Agra and Delhi, the Mughal army at Kalanaur lost heart and many commanders refused to fight Hemu. Most of his commanders advised Akbar to retreat to Kabul, which would serve better as a strong-hold. However,Bairam Khan, Akbar's guardian and chief strategist, decided on fighting Hemu at Panipat.

The battle was fought with all the vigor on both sides but gradually the advantage was shifting in Hemu's favour. He was on the verge of Victory when as bad luck would have it a stray arrow hit Hemu in the eye.Hemu was sitting in an elephant and exhorting his forces to give their best, but with the arrow in the eye he could not maintain balance and fell down. When his army saw their leader falling they lost heart and took to their heels and that was the end of last Hindu king of Delhi which was gained after 350 years.

Unconscious and at death's door, Hemu was captured and brought to Bairam Khan who beheaded him and his head was sent to Kabul to be hung publicly. A large number of his followers were rounded up and as is the practice of muslim invaders to spread terror they were killed in thousands and beheaded and tower was built with their skulls. His body was hung outside Purana qila to spread terror among the residents of Delhi.That was the end of a great administrator, commander, strategist and true son of the soil.

(Writer is a President of ABVP Delhi State & Associate Professor of Computer Science in Delhi University)

facebook

LIKE US

Stay Connected with IndianOil by joining us on Facebook

https://www.facebook.com/IndianOilCorpLimited

Twitter

FOLLOW US

Follow us on Twitter for regular updates, news and events

https://twitter.com/IndianOilcl

YouTube

SUBSCRIBE US

Subscribe to official YouTube Channel of IndianOil and Watch latest Videos

https://www.youtube.com/channel/UC5ho18VZHwEFSahW0Q_o-6g/feed

PARADIP PORT TRUST

THE PREFERRED PORT

An ISO 9001 : 2008 certified and ISPS code compliant Port.

- STRATEGICALLY LOCATED MARITIME GATEWAY ON THE EAST COAST OF INDIA
- SINGLE WINDOW SYSTEM
- MODERN CARGO HANDLING AND BULK MATERIAL HANDLING EQUIPMENTS
- EFFICIENT & COST EFFECTIVE SERVICES
- PRESENTLY PPT HANDLES 95,000 DWT VESSEL IN HARBOUR AND 3,50,000 DWT VESSEL AT SINGLE POINT MOORINGS (SPM)
- NEW DEEP DRAUGHT BERTHS TO BE BUILT WILL HANDLE 1,25,000 DWT VESSELS
- PPT HANDLING FERTILIZER
- WELL CONNECTED BY RAIL AND ROAD TO ITS MINERAL RICH HINTERLAND HAVING STEEL, POWER, FERTILIZER AND CEMENT PLANTS
- AVAILABILITY OF DRY DOCK FACILITIES
- COMPUTERISED SERVICES HAVING EDI AND PORT CONNECTIVITY SYSTEM
- EQUIPPED WITH VESSEL TRAFFIC MANAGEMENT SYSTEM (VTMS)
- 71.01 MILLION TONNES OF CARGO HANDLED DURING THE YEAR 2014-15
- THE CARGO HANDLING CAPACITY OF THE PORT WILL REACH 270 MILLION METRIC TONNES PER YEAR IN THE NEXT DECADE.

www.paradipport.gov.in

RNI No. 32464/78

आरईसी
REC
Endless energy. Infinite possibilities.

आरईसी का भारत के विद्युत क्षेत्र में अतुलनीय योगदान

अपनी स्थापना के बाद से ही आरईसी ने पूरे भारत में विद्युतीकरण योजनाओं को वित्तपोषित करने और बढ़ावा देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पिछले 46 वर्षों की अवधि में आरईसी भारत में विद्युत क्षेत्र की अग्रणी वित्तीय कंपनी के रूप में उभर कर सामने आई है। चाहे उत्पादन, पारेषण, वितरण हो या नवीकरणीय ऊर्जा हो आरईसी ने हर क्षेत्र में अपने प्रदर्शन से हमेशा नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं।

31.12.2015 को समाप्त नौमाही का वित्तीय कार्यनिष्पादन

विवरण	राशि	बढ़ोत्तरी
संवितरण	₹ 34,031 करोड़	वृद्धि 21%
लोन बुक	₹ 2,02,885 करोड़	वृद्धि 20%
नेट वर्थ	₹ 28,014 करोड़	वृद्धि 17%
निवल ब्याज आय	₹ 6,926 करोड़	वृद्धि 15%

रूरल इलेक्ट्रीफिकेशन कारपोरेशन लिमिटेड
(भारत सरकार का उद्यम)
कोर-4, स्कोप कॉम्प्लेक्स, 7 लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003, फोन: 24365161, फैक्स: 24360644,
ई-मेल: reccorp@recl.nic.in वेबसाइट: www.recindia.nic.in, सीआईएन: L40101DL1969GOI005095

*यह वैधानिक रिलीज नहीं है